मैं आत्मा हूँ

भाग : १-२

श्रीमद् राजचंद्र रचित
'श्री आत्मसिध्धि शास्त्र' पर प्रवचन

: व्याख्याता :

बा.ब्र.पू.डॉ. तरूलताबाई महासतीजी
M.A.Ph.D.

—: प्रकाशक :—

सौराष्ट्र केसरी प्राणगुरु जैन फिलोसोफिकल एन्ड लिटररी रीसर्च सेन्टर

ॐ जैन कन्या शाळा ट्रस्ट, श्री जगधीर बोडा विद्या संकुल,
कामा लेन, घाटकोपर (वेस्ट), मुंबई – ४०० ०८६.
फोनः ५१२ ५६५८, ५१५ ५४७६, ५१६ ३४३४

ક્ષ૭૦ ૩૨૫૩ ૩૧ક્ષ૭૦

ॐ ૬૨ ૬૭૩ ૨૪૬૮

ૐ ૩૧૬. ૨૬૬૬૮૬૬૬૬૬૯ ૫૬૭૬૬૬૬૬૯૧૩૧૧ - ૫૩૬૬.૩૧.

ક૧૮૬૧૧ ૩૧૧૬૪૬૬૬૬૩

૬૬૬૬૩૩૬ ૪૮ ૨૭૬૧૧૨૬૬ ૩૬૬૧૧૩૭૭૬૮૬૬૬૬૬

૩૬૨૬૬૬૩૧૬૬૬૭૧ ૨૭૬૬૬૬૬૬૬૬ (૫૬૬ ૨૦૦૨)

: प्रकाशक:

—: प्रकाशन सौजन्य :—

श्रीमती रमाबेन छोटालाल दफ्तरी,
श्रीमती जयाबेन शांतिलाल कामदार,
श्रीमती ईंदीराबेन शशीकांत महेता
श्रीमती मंजुलाबेन अनीलकुमार बोटादरा

—: **प्राप्ति स्थान** :—

● **गुणवंत एम. बरवाळिया**, मानद् संयोजक
ॐ जैन फिलोसोफीकल एन्ड लीटररी रीसर्च सेन्टर
૩૬૧૮.૨૬૬૧૬૩ :
१/३१६, सिद्धिविनायक सोसायटी, हिंगवाला लेन एक्ष.,
घाटकोपर (ईस्ट), मुंबई – ४०० ०७५.
फोनः ५१२ ५६५८, ५१५ ५४७६

● **कल्पतरु अध्यात्म केन्द्र**
सुमेरु नवकार तीर्थ के नजदीक, मु. मीआगाम, ता. करजण,
जि. वडोदरा – पीन ३९१२४०

किंमत : रु. २००/-

द्वितीय आवृत्ति : मई २००२

—: मुद्रक :—

नितीन बदाणी — अरिहंत प्रिन्टींग प्रेस
पंतनगर, साईबाबा नगर, ३१० त्रिकाल बिल्डींगके पिछे,
घाटकोपर (पूर्व), मुंबई–४०० ०७७. फोनः ५११४३४१, ५१११९१५२
फॅक्सः ५०९०७०३

समर्पण

परम श्रद्धेय, वात्सल्यमूर्ति परम पूज्य बा.ब्र.ललिताबाई महासतीजी (बापजी) के श्री चरणों में सविनय.....

हे अम्ब!
तव हृदयनी सर्व सरवाणीओ
वहे छे मुज परे.....
शा-शा तेना नाम दऊँ।
मुज मस्तके जे कर धरे.....
कृपा किरण के वात्सल्य धारा?
उर नां अमी के सु-भाव सारा?
सतत मुज श्रेयनुं चिंतन
रहे छे तव उरे.....
आ कालमां तव चरण पामी
थई हुँ कृतकृत्य खरे.....!
तव अमी-सिंचनथी खील्युं जे
पुष्प मुज जीवन बागे.....
तेने धरूं छुं तव चरणमाँ
मुज हृदयनां सर्व भावे.....

आपकी चरणधूली **तरू**

आशिर्वचन

परम श्रध्धेय गुरुदेव तप सम्राट बा.ब्र. परमपूज्य श्री रतिलालजी महाराज साहेब के मौखिक आशिर्वचन।

साध्वी तरुलता जिनशासन का महकता हुआ पुष्प हैं। स्व-कल्याण हेतु होने वाली उनकी साधना, पर-कल्याण के हेतु होती हुई दिखाई देती है। साध्वीजी के इस प्रथम पुस्तक प्रकाशन के समय उन्हें मेरे अधिकाधिक आशिर्वाद हैं। वे और आगे बढे और प्रति वर्ष उनकी ऐसी पुस्तकें प्रकाशित हों।

आत्मचिंतनके निरंतर बहते हुए झरणोंका पवित्र प्रवाह

अध्यात्मयोगिनी पू. ललिताबाई म.स.जी की विदूषि शिष्यरत्ना पू. डॉ तरूलताबाई म.स.जीने मुंबई युनिव्हरसिटीसे Ph.D. की पदवी प्राप्त की है। युगपुरुष श्रीमद् राजचन्द्रजी, अवधुतयोगी आनंदघनजी, महाकवि बनारसदासजी एवं संत कबिर ये सत्पुरुष इनके महानिबंध के विषय थे।

शोधप्रबंधक के संशोधन कार्य दरम्यान पूज्य म.स.जीने श्रीमद की आत्मसिद्धि पर गहन अध्ययन कीया। इसके फलस्वरूप सं. २०४२ में आत्मसिद्धि शास्त्रपर आपका प्रवचन संग्रह संबंधित "मै आत्मा हूँ" ग्रंथ के रूप में प्रस्तुत हुआ।

हम जब के संकुल जीवन शैलीमें जी रहे है तब आत्मतत्त्वकी पहचान करानेवाले ऐसे सत्साहित्यकी बहुत आवश्यकता है। प्रस्तुत ग्रंथ के शब्द बिंदु व्याख्याता के आत्मानुभूति का निचोड है।

पू. श्री के प्रवचनो की अस्खलित धारा सुमधुर झरनो जैसी बहती है। चिंतनयुक्त तत्व का सरल शैली में प्रस्तुतीकरण जनजन को भा गया है। इसीलिए इस ग्रंथ की गुजराती में चतुर्थ एवं हिंदीमें द्वितीय आवृत्ति होने जा रही है। यही इस ग्रंथ की महत्ता दर्शा रही है। दो वर्ष पूर्व अंग्रेजी भाषामें भी इस ग्रंथ की दो हजार प्रतों का प्रकाशन हो चुका है।

स्वाध्याय प्रेमी मुमुक्षु भाई-बहेने इस ग्रंथ का नियमीत स्वाध्याय करते है। आत्मचिंतन की निरंतर प्रवाहीत धारा से प्रभावित होकर तत्वदर्शी प.पू. श्री जयंतीलालजी महराजश्रीने इस ग्रंथ को 'देवताई आईने' की उपमा दी है।

विदुषि व्याख्याता पू. तरूलताजी महासतीजीने "मैं आत्मा हूँ।" के अंतर्गत आत्मतत्त्व के अद्भूत रहस्यों को सरलशैली में प्रस्तुत किया है। स्व में समाकर आत्मा की अथाग शक्तिको पाने का प्रयास इस ग्रंथ के चिंतन मनन से अवश्य ही होता है।

प्रत्येक प्रकरण के अंतमें 'आत्मचिंतन' की अत्यंत मननीय पंक्तियों का पठन तन-मन को अवश्यही झकजोर कर देता है।

आत्मतत्त्व जैसे कठिन द्रव्यानुयोग के सिद्धांतों को सरलता से जनमानस को समझाने के लिये पू. सतीजीने कथानुयोग द्वारा समझाया है। द्रष्टांत एवं कथा द्वारा आत्मतत्त्व जैसा गहन विषय समझने में सरल एवं सूपाच्य हुआ है।

संतो का जीवन स्वयं एक प्रयोगशाला है। स्वानुभव में जो पाया वही परमार्थ हेतु जनमानस के समीप किया। उनके हर कर्तव्य में जनकल्याण समाया हुआ है।

१९९८ का वर्ष, सौराष्ट्र केसरी पूज्य गुरुदेव प्राणलालजी महाराजश्री के जन्म शताब्दि वर्ष के रूप में मनाया गया। स्व.पू. गुरुदेवकी स्मृति चिरंजीव रखने हेतु पू. बापजी एवं पू. डॉ. तरूलताजी स्वामी आदि सतीवृंद की प्रेरणा से एक जैन रिसर्च सेन्टर की स्थापना की गई। इस सेन्टर को "सौराष्ट्रकेसरी प्राणगुरु जैन फिलोसोफीकल एन्ड लीटररी रीसर्च सेन्टर" यह नाम प्रदान किया गया। जिनकी प्रेरणा से ही यह सेन्टर की स्थापना हुई है ऐसे पू. महासतीजीके प्रवचन संग्रह इसी सेन्टर के द्वार प्रस्तुत करते हुए हम परम धन्यता अनुभव करते है।

इस सत्कार्यमें श्री किरीटभाई दफ्तरी (टेक्सास – अमेरिका) का हमें बहुत सहयोग प्राप्त हुआ है।

प्रकाशन कार्य में सहयोग हेतु दानवीर दाताओंके आभारी है।

सेन्टर के विकास कार्य में सहभागी होने के लिए श्री कुमुदभाई महेता, श्री जीतुभाई शेठ, मिलनभाई अजमेरा, श्री तुषारभाई बाटवीया, श्री बिपिनभाई संघवी, श्री हसमुखभाई अजमेरा के बहुत आभारी है।

स्वाध्याय प्रेमी एवं आत्मार्थी मुमुक्षुओं की ज्ञान पिपासा को यह ग्रंथ अवश्य में संतुष्टी प्रदान करेगा ऐसी श्रद्धासह.....

गुणवंत बरवालिया
मानद् संयोजक
सौराष्ट्रकेसरी प्राणगुरु जैन
फिलोसोफिकल एन्ड लिटररी
रीसर्च सेन्टर

अक्षयतृतिया
मई – २००२

`अहम्' की खोज

समय था सन १९५० का, उम्र थी ११ साल, रविवार की मनोहर संध्या.... अन्तर से एक आवाज उठी, ``मैं हूँ''...यह कौन बोल रहा है.... न पहचान पायी किन्तु पल-पल बहते जाते समय के साथ...`मैं हूँ'.... `मैं हूँ'....की ध्वनि तीव्र बनती चली। मैं उस स्वर में खो गयी, न जाने कितने क्षण बीत गये..... शनैः शनैः आवाज मंद होती हुई अंतःस्तल में समा गई।.... वह कौन था? न समझा.... किशोर मन.....!!

सन १९५८.....

अध्यात्मयोगिनी.... वात्सल्य हृदयी.... परम् श्रद्धेय पूज्या गुरुणीजी (मेरे भक्ति भाजन प्यारे बापजी) के श्री चरणों में यह जीवन समर्पित किया..... पूज्या बापजी का प्रेमल सानिध्य....उनकी सतत कृपावृष्टि एवं अविरत आत्मिक दृष्टि, मेरे सहानुभूति जन्य `अहम्' को जागृत करने में दीप-शिखा बनी रही और मैंने श्री चरणों में `अहं' न्योच्छावर करते हुए....मेरे नीजी `अहम्' की खोज शुरू की.... अनेकानेक सुभग संयोगो ने `अहम्' प्रगट करने का पथ प्रशस्त किया और `अहम्' को पाने की पिपासा तीव्रतर से तीव्रतम बनती चली किन्तु.... दिशाएँ बधिर थी.... पथ धुंधला था.... और मैं भटक रही थी....तब....तब...

`महर्षि रमण के पावन परमाणुओं के सं-स्पर्श ने..., उनके `मैं कौन?' इस सनातन प्रश्न ने....दिशा बोध दिया! अंधकार

विलीन हुआ.... दिशाएँ प्रतिभासित हुईं, `अहम्' की खोजने, गहराई में प्रवेश पाया और श्रीमद्राजचन्द्रजी की अप्रतिम कृति, श्री आत्मसिद्धि शास्त्र की ओर, दृष्टि गई। मेरी अल्पमति से शास्त्र के गहन रहस्यों की थाह पाने का प्रयत्न करती रही....

आज आप के समक्ष मेरा यत्किंचित यत्न रख रही हूँ; वह है मेरे `अहम्' की खोज। खोज में निकले हुए मानव के सामने अनेक पगडंडियाँ होती है, वह कभी भटक जाता है.... तो कभी राह तक पहुँच जाता है। भटकना....भूलना....और....पुनः रास्ता पकड लेना.... यह खोजी मानव के लिए सहज है। मेरी खोज मुझे लक्ष्य तक पहुँचा पायी है या नहीं मैं नही जानती, किन्तु खोज में हूँ। मेरे `अहम्' को सं-स्पर्श नहीं हुआ अभी तक...! `अहम्' को पाने के प्रयास में ही जिनवाणी के सत्यों को समझने का आयास किया है।

अन्त में मेरी अज्ञानता के कारण जिन-आज्ञा के विरुद्ध लिख दिया हो और जिन-वाणी की अशातना हुई हो तो...मनसा-वाचा-कर्मणा मिच्छामिदुक्कडं....!

आर्या तरूलता

परम श्रद्धेय बा.ब्र.प.पू. श्री जयंतिलालजी म.सा. के आशिर्वचन

आत्म-सिद्धि का शिल्प

योगानुयोग है कि – आत्मसिद्धि एवं तरुलता जैसी सोने की मूर्ति, श्रेष्ठ कलाकार संगमरमर की मूर्ति एवं महाशिल्पी का सुयोग हो, उसी प्रकार आत्मसिद्धि जैसे १०० कैरेट के सोने को तरुलता जैसा स्वर्णकार स्पर्श करता है फिर आत्मसिद्धि का नवनीत नई-नई प्रतिभाओं के साथ परोसा जाये तो उसमें आश्चर्य ही क्या है? उत्तम श्रोता की आवश्यकता के सिवा कोई कमी नहीं रहती।

आत्मसिद्धि पर तरुलताजी के प्रवचन का अर्थ गुलाब का बगीचा। आध्यात्म साहित्य में ऐसे बगीचे सहज में ही कब खिला करते हैं? जब उत्तम माली भंडार में पडे हुए उत्तम बीज को अच्छे ढंग से बोकर उसका पौधा तैयार करता हो-तब।

यहाँ भी सहज रूप से त्रियोग उपलब्ध हुआ है।

(१) उत्तम सुपात्र श्रोताओं से महकता हुआ मद्रास जैसा श्रीसंघ और उसका क्षेत्र।

(२) आत्मसिद्धि का उत्तम बीजारोपण।

(३) भक्ति रुपी जल से सिंचन करनेवाली तरुलता जैसी कलापूर्ण उत्तम मालिन, फिर यह कार्य कितना सुन्दर होगा, यह मैं सरलता से ही समझ रहा हूँ।

वस्तुतः आत्मसिद्धि हमारे जैन संघ का खजाना है। इस रत्नराशि को देखने के बाद ऐसा लगता है कि इसकी गहराई

को नापनेवाला कोई निकले। यह हीरा घिसा जाए तो कैसा निखार आ जाये! परन्तु कलाकार के अभाव में यह कार्य संभव नहीं होता।

अपने शब्दों में मैं उसे आत्म सिद्धि नहीं कहता, परन्तु यह ग्रंथ उस सिद्धि की आत्मा है। दुनियाँ में जो भी सिद्धियाँ या प्रसिद्धियाँ है। वे वास्तविक उत्तम सिद्धियाँ नही है। परन्तु जिसके प्रभाव से सिद्धयाँ बुद्ध हुआ जा सके वह वास्तविक सिद्धि है। सिद्धि के लिए जो उत्तम वाणी प्रकट होती है उसमें सिद्धि की आत्मा बोलती है। सिद्धि की आत्मा को वाचा देनेवाला साधारण वक्ता नही हो सकता। जिसने आध्यात्म तत्व को आत्मसात करने की साधना की हो ऐसी आत्मा ही उसे वाचा दे सकती है।

हमारी प्रिय विद्वरत्न शिष्या Ph.D. तो हुई। तरुलताजी जब तक चंदन के वृक्ष पर न चढे तब तक सही माने में तरुलताजी कैसे कहीं जाये? प्रवचन देते-देते उन्होंने आत्मसिद्धि की बांसुरी बजा दी। यह अद्‌भुत निनाद, मधुर आल्हादकता के भाव हमारे सामने प्रकट हो रहे हैं! उन्होंने चंदन को स्पर्श किया है और तरुलता मिटकर चंदनलता हो गई हैं।

इस मंगल अवसर पर उपर्युक्त चंद शब्दों में अपनी अंतरंग श्रद्धा को व्यक्त करते हुए अपार हर्ष का अनुभव कर रहा हूँ। श्री तरुलताजी का प्रवचन और वह भी अध्यात्म प्रवचन प्रकाशित हो, हमारे लिए यह अनमोल आनन्द के प्रागट्य का अवसर है। उनके प्रवचन के प्रकाशन के सु-संवाद से मैं इतना भाव विभोर हुआ हूँ कि अपने अंतर के भाव लेखनी द्वारा प्रकट नहीं कर सकता। हमें दृढ विश्वास है कि यह प्रवचन-लता सम्पूर्ण भारत में जैन तथा सभी अध्यात्म प्रेमी

जनता के अंतःकरण को जरूर स्पर्श करेगी। आज सब अपने-अपने प्रवचनों को प्रकाशित करने की जो दौड लगा रहे हैं और बहुधा पुस्तकों के कलेवर के अलावा कुछ प्राप्त नहीं होता, वहाँ यह सिद्धि ग्रंथ की प्रस्तुती प्रवचन पुस्तक की मणि बनकर कौस्तुभ मणि के समान चमकेगी।

गुजराती, हिन्दी के अलावा अन्य भाषाओं में भी प्रगट करने के लिए इस ग्रन्थ को स्वतः बल प्राप्त होगा।

पुनः मद्रास श्रीसंघ तथा तरुलताजीने स्वयं आर्शिवचन भेजने की संप्रेरणा दी है। जिससे गौरव के साथ संतुष्टि का अनुभव करते हुए सद्शिष्या के सुपराक्रम के लिए वीर प्रभु की असीम कृपा मानता हूँ। अंत में एक महत्त्वपूर्ण पंक्ति लिखकर विराम करता हूँ। वह है महाश्वेता, आगम विहारिणी प्रवचन प्रौढा श्री ललिताबाई स्वामी, तरुलताजी की प्रिय `बापजी' गुरुणी जिनकी अनुपम कृपा से तरुलताजीने उत्तम संस्कार प्राप्त किये एवं सहज भाव से आत्मसिद्धि के हिमालय में विचरण करके आत्मध्वज लहरा सकी।

आनन्द मंगलम्

पू. बापजी के आर्शिवचन

आत्म शुद्धि ही सिद्धि

मनुष्य बुद्धि द्वारा बहुत कुछ जानता है, उपभोग करता है। परन्तु उससे ईष्ट की उपलब्धि नहीं होती। उसके लिए तो भाव तथा विवेक पूर्वक आंतरिक चेतना की जागृति आवश्यक है। बुद्धि विवेक पूर्वक ज्ञान चेतना से जुडती है तब प्रज्ञा का रूप धारण करती है। यह सब बाहर नहीं परन्तु, हमारे अन्दर ही हैं। और वह भी अपने भाव पुरुषार्थ के आधीन हैं। इसी सत्य को निर्देश करने का साध्वी तरुलताजी का यह प्रयास है।

आत्मसिद्धि शास्त्र आत्मा की शुद्धि के लक्ष्य से ही रचा गया है। रचयिता के लक्ष्य में स्व एवं पर दोनों की शुद्धि दिखती है। और वह बात भी इतनी ही स्पष्ट एवं सत्य है कि बिना बुद्धि के सिद्धि नहीं है। कार्य और ध्येय दोनों आत्मा के लिए ही हैं। शुद्धि भी आत्मा की और सिद्धि भी आत्मा की। इस शास्त्र की रचना करनेवाले का लक्ष्य स्व-पर हित एवं शुद्धि तथा सिद्धि का है। उसी प्रकार इस शास्त्र को व्याख्यान के रूपमें प्रस्तुत करनेवाला व्याख्यानकार का ध्येय भी स्व-पर हित एवं शुद्धि तथा सिद्धि का है। इसमें शंका का कोई स्थान नहीं है। ऐसे उच्चादर्श के फलस्वरूप ही ऐसी भाव पूर्ण भाषा प्रस्फुटित होती है। अन्यथा व्याख्यान एवं भाषा में कृत्रिमता दिखाई पडेगी। यहाँ हमें भाव के साथ भक्ति भी देखने को मिलती है। भाव से परिपूर्ण यह भाषा जिज्ञासु जनों के हृदय को सराबोर करके आत्मसात् करवाकर आत्मानुभूति तक ले जाये, हमारी यह आंतरिक अपेक्षा अस्थान नहीं कही जा सकती।

इन व्याख्यानों में अलंकारिक भाषाकीय प्रयोग के बिना ही विषय का प्रस्तुतिकरण किया गया है। दृष्टांतों से श्रोताओंका मनोरंजन नहीं किया गया है। परन्तु सम्भावनाओं और शक्ति के अनुसार सत्य को समझाने का प्रयास किया गया है। साधकों का ज्ञान स्व उपकारी ही होता है। सब संतो का श्रुत ज्ञान स्व एवं पर दोनों के लिए उपकारी बनता है। श्रीमद्राजचन्द्रजी के द्वारा प्रदत्त यह आत्मसिद्धि शास्त्र स्व पर उपकारी है। वे जबरदस्त जिम्मेदारी लेते हुए कहते हैं कि – ``आप साधना शुरू करो और सिद्धि की चिंता हमें सौंप दो।''

उन्हीं के शब्दों में कहें तो ``आप नये कर्मो का बंध रोक दो पुराने की चिंता मत करो।'' 'फिर अगर मोक्ष न मिले तो हम से लेना।'

यद्यपि आत्मसिद्धि का यह विषय ही सहजता से भरा हुआ है। साथ ही इस व्याख्यानकार का प्राकृतिक गुण भी ऐसा है कि उनकी हर प्रवृत्ति में सहजता एवं सरलता दिखाई देती है। कृत्रिमता लेश मात्र भी नहीं है। साध्वी तरूलता यश कीर्ति के भाव को पोषित करने की इच्छा कम रखती हैं, जो उनकी साधनादृष्टि की आभारी है। जिसके अन्तर में साधना की भावना भरी हुई है, वही आत्मा साधना करते हुए सफलता का सोपान सर कर सकता है और आत्मशुद्धि की बात करने की योग्यता तथा अधिकार रखता है जिसमें, ज्ञान एवं क्रिया दोनों का समन्वय हो। सिर्फ जड क्रिया या कोरा ज्ञान नहीं है। जो जानते हैं उसमें से ही यथा शक्ति कहने और आचरण करने की कोशिश करते हैं।

ऐसी साध्वीरत्ना के पास समाज भी नयी-नयी कृतियों की आशा रखे तो यह भी अप्रासंगिक नहीं है। हम आशा करते हैं कि वे नित नयी कृतियों की रचना करें, और अपनी लाक्षणिक कला-छटा को मूर्तरूप प्रदान करके लोकोपयोगी बनायें। जिस प्रकार धनवान का धन परोपकार के लिए उपयोग किया जाता है, उसी प्रकार ज्ञानियों का ज्ञान भी लोकोपयोगी बनना चाहिए।

साध्वी तरुलता का यह प्रथम प्रयास होने के बावजूद भी अधिक बलवान है। इससे सिर्फ साध्वीजी के नाम को ही नहीं परन्तु समाज, संघ सम्प्रदाय एवं शासन में चार चाँद लग रहें हैं। जिसे देखकर मैं स्वयं को महा भाग्यशाली मानती हूँ।

जिज्ञासुओं की जागृति ही हमेशा कृति के कर्ता के लिए प्रेरणा रूप बनती है। अब देखना यह है कि इस पुस्तक के प्रभाव से जिज्ञासुओं की उत्सुकता ऐसे साहित्य के लिए कितनी रहेगी और उसमें कितनी वृद्धि होगी?

यह व्याख्यान श्रोताओं को पठन करने या पठन करने के बाद लाभदायक साबित होगा ही। परन्तु व्याख्यानकार के लिए तो उसी क्षण महान लाभकारी बन गया है। दिन-प्रतिदिन उनके भाव वर्धमान बनकर भाषा द्वारा प्रगट हों, नित नये ग्रन्थों का सृजन हो, और उनका ज्ञान तथा चिंतवन स्व-पर कल्याण का कारण बना रहे।

ऐसी मंगल कामनाओं सहित

साध्वी ललिता

प्रस्तावना

अध्यात्म और विज्ञान

अतीत काल से ही मानव जीवन के साथ अध्यात्म और विज्ञान का अत्यन्त गहरा सम्बन्ध रहा है। ये दोनों सत्य के अन्तस्तल को समुद्घटित करनेवाली दिव्य और भव्य दृष्टियाँ है। अध्यात्म आत्मा का विज्ञान है। वह आत्मा के शुद्ध और अशुद्ध स्वरूप का, बन्ध और मोक्ष का, शुभ और अशुभ परिणितियों, हास और विकास का गम्भीर व गहन विश्लेषण है तो, विज्ञान भौतिक प्रकृति की गुरु गम्भीर ग्रन्थियों के सुलझाने का महत्वपूर्ण साधन है। उसने मानव के तन, मन और इन्द्रियों के संरक्षण व संपोषण के लिए विविध आयाम उपस्थित किए है। जीवन की अखण्ड सत्ता के साथ दोनों का मधुर सम्बन्ध है। अध्यात्म जीवन की अन्तरंग धारा का प्रतिनिधित्व करता है तो, विज्ञान बहिरंग धारा का नेतृत्व करता है।

अध्यात्म का विषय है – जीवन के अन्तःकरण अन्तश्चैतन्य एवं आत्मतत्व का विवेचन व विश्लेषण करना। आत्मा के विशोधन उर्ध्वीकरण करने की प्रक्रिया प्रस्तुत करना। जीव और जगत, आत्मा और परमात्मा, व्यक्ति और समाज-प्रभृति के अणु से होकर ब्रह्माण्ड तक का प्रयोगात्मक अनुसन्धान करना। अध्यात्म योग है तो विज्ञान प्रयोग है। अध्यात्म मन, वचन काया की प्रशस्त शक्तियों को केन्द्रित कर मानव चेतना को विकसित करनेवाली निर्भय और निर्द्वन्द्व बनने की दिव्य व भव्य दृष्टि प्रदान करता है। वह विवेक के तृतीय नेत्र को उद्घटित कर काम विकारों को भस्म करता है। जबकि विज्ञान नित्य नई भौतिक सुख-सुविधाओं को समुपलब्ध कराने में अपूर्व सहयोग देता है। विज्ञान के फलस्वरूप ही मानव अनन्त आकाश में पक्षियों की भांति उडानें भरने लगा है। मछलियों की भांति अनन्त

सागर की गहराई में जाने लगा है, और पृथ्वी पर द्रुतगामी साधनों से गमन करने लगा है। विद्युत के दिव्य चमत्कारों से कौन चमत्कृत नही है।

अध्यात्म अन्तर्मुख है तो विज्ञान बर्हिमुख है। अध्यात्म अन्तरंग जीवन को सजाता है, संवारता है तो विज्ञान बहिरांग जीवन को विकसित करता है। बहिरंग जीवन में किसी भी प्रकार की विश्रृंखलता न आये, द्वन्द्व समुत्पन्न न हो इसलिए अन्तरंग दृष्टि की आवश्यकता है एवं अन्तरंग जीवन को समाधियुक्त बनाने के लिए बहिरांग का सहयोग भी अपेक्षित है। बिना बहिरांग सहयोग के अन्तरंग जीवन विकसित नहीं हो सकता मूलतः अध्यात्म और विज्ञान परस्पर विरोधी नहीं है। उनमें किसी प्रकार का विरोध और द्वन्द्व नहीं है। वे एक दुसरे के पूरक है। जीवन की अखण्डता के लिए दोनों की अनिवार्य आवश्यकता है।

आत्मा का अस्तित्व आगम, अनुमान, स्वानुभव आदि प्रमाणों से सिद्ध है। भगवान महावीरने आचारांग सूत्र में आत्मा के अस्तित्व को प्रमाणित करने के लिए कहा —

``अनेक व्यक्ति यह जानते है कि मै कहाँ से आया हूँ? यहाँ से मरकर पुनः कहाँ जाऊँगा?

जिसको यह ज्ञात हो जाता है कि मेरी आत्मा औपपातिक है – विभिन्न गतियों से आई है। जो इन (विभिन्न) दिशाओं या अनुदिशाओं में कर्मानुसार संचरण करती है। सभी दिशाओं या अनुदिशाओं से जो आयी है और अनुसंचरण करती है, वही मैं आत्मा हूँ।'' इस प्रकार आत्मा का अस्तित्व आगम प्रमाण से सिद्ध होता है।

आत्मा शुद्ध, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श से रहित होने से इन्द्रिय ग्राह्य (इन्द्रिय-प्रत्यक्ष) नहीं है, इसलिए वह अमूर्त (अरूपी) है, इससे उसके अस्तित्व पर कोई आँच नहीं आती। संसार में

बहुत से सूक्ष्म पदार्थ ऐसे है जो इन्द्रिय ग्राह्य नहीं है, फिर भी उनका अस्तित्व माना जाता है। इन्द्रिय प्रत्यक्ष वादी लोगों ने अपने पूर्वजों को नहीं देखा, फिर भी वे उनके अस्तित्व को मानते हैं। इसलिए एक मात्र इन्द्रिय प्रत्यक्ष को मानने से संसार का कोई व्यवहार चल नहीं सकता!

मैं सुखी हूँ, मैं दुःखी हूँ, इस प्रकार स्वानुभव (स्व-संवेदन) प्रमाण से आत्मा का अस्तित्व सिद्ध होता है! ऐसा संवेदन पंचभूतात्मक जड शरीर को नहीं हो सकता। **तज्जीव-तच्छरीरवादी** या भूत चैतन्यवादी के मतानुसार पंच भौतिक शरीर को ही आत्मा कथमपि नहीं माना जा सकता, क्योंकी मृत शरीर में पंचभूत होते हुए भी चैतन्य नही होता, न ही जड शरीर ज्ञान। इच्छा आदि गुणों का उपादान हो सकता है, वह तो आत्मा ही हो सकता है। जो शरीर आदि से पृथक है। अचेतन पंचभूत या शरीर कभी चेतन नहीं हो सकता, क्योंकि दोनों में परस्पर आत्मन्ता भाव है।

ज्ञेय या ग्राह्य (साधन) इन्द्रिय समूह से ज्ञाता या साधक आत्मा पृथक है। मृत शरीर में इन्द्रियाँ होने पर भी ज्ञान प्राप्त करनेवाला आत्मा न होने से उन्हें किसी प्रकार का ज्ञान नहीं होता।

इन्द्रियों के नष्ट हो जाने पर भी देखे-सुने या जाने हुए विषयों का स्मरण होता है। वह स्मरणकर्ता-चैतन्यरूप आत्मा ही है। इन्द्रियाँ अपने-अपने विषय को ग्रहण करती हैं। एक इन्द्रिय के विषय को नहीं जान सकती, किन्तु सभी इन्द्रियों के विषयों का एक साथ संकलनात्मक ज्ञान (अनुभव) करनेवाली आत्मा ही है।

आत्मा के अस्तित्व के विषय में कोई बाधक प्रमाण न मिलने से तथा असत् का निषेध नहीं होता, जिसका निषेध होता है, उसका अस्तित्व अवश्य होता है। इन युक्तियों से आत्मा का अस्तित्व सिद्ध होता है।

चैतन्य गुण प्रत्यक्ष होने से गुणी चेतन (आत्मा) की सत्ता

भी प्रमाणित हो जाती है। तथा वस्तु का अस्तित्व उसके असाधारण गुण से सिद्ध होता है। इस न्याय से आत्मा में चैतन्य (उपयोग) नामक विशेष गुण है। जो दूसरे किसी भी पदार्थ में नहीं है। यह भी आत्मा के अस्तित्व को सिद्ध करता है।

मैं नही हूँ, इस प्रकार का संशय भी चेतन को होता है अचेतन को नहीं! इस दृष्टि से भी आत्मा का अस्तित्व सिद्ध होता है।

और भी अनेक युक्तियों और तर्कों द्वारा आत्मा का अस्तित्व सिद्ध होता है।

आत्मा का स्वतन्त्र अस्तित्व मानते हुए उपनिषदो में इस विषय की यथा तथ्य चर्चा की गई है —

केनेषितं पतितं प्रेषितं मनः?
केन प्राणः प्रथमं प्रैति युक्तः?
केने पितां वाचमिमां वदन्ति?
चक्षु श्रोत्रंक उदेवो युनक्ति?

अर्थात् मन किसकी प्रेरणा से दौडाया हुआ अपने विषय में दौडता है, जिसके द्वारा प्रथम प्राण संचार सम्भव हुआ? किसकी चाही हुई (अभिष्ठ) इस वाणी को बोलता है? कौन देवता देखने और सुनने की व्यवस्था बनाता है?

इसका समाधान यदि खोजा जाये तो आत्मा ही वह तत्व है, जो मन, बुद्धि, चित्त, प्राण, वाणी, नेत्र और श्रोत्र आदि को अपने-अपने विषय में गति-प्रगति करने की प्रेरणा देता है। मन अपने आप नहीं दौडता। मन को दिशा देनेवाली मूल सत्ता का नाम आत्मा है।

दूसरा प्रश्न है — माँ के गर्भ में बालक के आने पर सर्व प्रथम प्राण का संचार कौन करता है? गर्भस्थ शिशु में जीवन संचार के रूप में हलचलें कैसे पैदा होती है? रक्त, मांस, मज्जा, अस्थि आदि सब तो जड है। जड तो चेतन हो नहीं सकता।

उत्तर यह है कि यह सब कर्तृत्व 'आत्मा' का है।

तीसरा प्रश्न है — वाणी का अमीष्ट बोलना, मुख शरीर एवं जीव आदि इन्द्रियों का नहीं है। वाणी से कडवे शब्द बोलना इष्ट हो तब कडवे और मीठे शब्द बोलना अमीष्ट हो तब मधुर शब्द बोला जाता है। वह बुलवाने वाला कौन है? यदि वाणी स्वतन्त्र एवं स्वतः प्रेरित बोलती तो वह तोते की तरह अभ्यस्त शब्दों के सिवाय और किसी शब्द का उच्चारण न करती। अतः तथ्य यह है कि वाणी से अमिष्ट अमृतमय या विषमय शब्द निकालने वाली अन्तर चेतना उससे पृथक और स्वतन्त्र है, जिसका नाम आत्मा है।

चौथा प्रश्न है — आँखे किसकी प्रेरणा से देखती हैं? कौन किसकी प्रेरणा से इच्छानुसार सुनते हैं? इसका उत्तर भी वही है। जिस की प्रेरणा से आँखे और कान सक्रिय रहते हैं, वह सत्ता आत्मा की है। अन्यथा आँखो में स्वतन्त्र देखने की या कानों में स्वतंत्र सुनने की शक्ति होती तो मृत या मुर्च्छित स्थिति में भी आँखे देखती और कान सुनते।

दूसरे मन्त्र से उपनिषद के ऋषि ने पूर्वोक्ति प्रश्नों का यही (उपर्युक्त) समुचित उत्तर दिया है। मन में मनन करने की, प्राण में संचालन की, वाणी में बोलने की, आँखों में देखने की एवं कानों में जो सुनने की शक्ति है वह उसी आत्मा की शक्ति है।

इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, प्राण आत्मा नहीं है। इन्द्रियाँ मन और बुद्धि में जो जानने आदि की शक्ति होती है, वह आत्मा की होती है। शरीर से आत्मा के निकल जाने पर इन्द्रिया मन और बुद्धि आदि होते हुए भी वे जानना, देखना, सूँघना आदि क्रियाएँ नहीं कर सकती। इससे सिद्ध होता है कि इन्द्रियाँ आदि अचेतन है, आत्मा ही एक मात्र सचेतन है।

आत्म-अस्तित्व के विषय में पुनर्जन्म ऐसे अकाट्ट्य प्रमाण मौजूद है जिनसे यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि जीव के मरने के

बाद भी उसमें जीव चेतना (आत्मा) को अस्तित्व बना रहता है। वैज्ञानिकोंने इस विषय के सैंकडो प्रमाण एकत्र किये हैं, जिनसे यह प्रमाणित होता है कि शरीर छूट जाने बाद भी कई आत्माएँ जहाँ जाती है, वहाँ भी उन्हें पूर्वजन्मों की स्मृति बनी रहती है। अशिक्षा अज्ञान और अभाव के वातावरण में संगीतज्ञ, गणितज्ञ मेघावी और विद्वान का पैदा होना तथा श्रेष्ठ परम्पराओं और उत्कृष्ट वातावरण वाले परिवारों में दुर्गुणी-दुराचारी सन्तान का जन्म होना, इत्यादि घटनाएँ आये दिन देखने सुनने को मिलती है।

कई दर्शन एवं धर्म-सम्प्रदाय आत्मा के अस्तित्व को तो मानते हैं परन्तु आत्मा के स्वरूप के विषय में काफी मतभेद हैं।

जैन दर्शन की दृष्टि से आत्मा (जीव) का स्वरूप इस प्रकार है – **`जीवो अणाइ अनिधणो अविनासी अक्खओ धुवो निच्चं** जीव (आत्मा) अनादि है, अनिधन है, अविनाशी है, अक्षय है, ध्रुव और नित्य है।

आत्मा अनिश्चय नय से `अनादि' है उसका किसी विशेष समय पर जन्म नहीं हुआ, वह अजन्मा है। किन्तु व्यवहार नय की अपेक्षा से जीव सुख दुःख वेदनावश शुभाशुभ कर्म बाँधकर उसके फल स्वरूप नाना गतियों और योनियों में, विविध पर्यायों में उत्पन्न होता है। पर्याय दृष्टि से एक गति से दूसरी गति में जाने की अपेक्षा उसकी आदि मानी जाती है।

आत्मा को निश्चय नय की दृष्टि से `अनिधन' इसलिए कहा गया है कि वह मरता नहीं है। व्यवहार नय की दृष्टि से जो यह कहा जाता है कि अमुक जीव मर गया। उसका अर्थ इतनाही है कि उसने जिस देह को धारण किया था, उससे उसका सम्बन्ध विच्छेद हो गया. आयुष्य की अवधिपूर्ण होने पर उसका इस शरीर से छुटकारा हुआ। आत्मा की शरीर परिवर्तन की इस क्रिया को मरण कहा जाता है। वस्तुतः यह आत्मा का मरण नहीं है।

इसे `अविनाशी' इसलिए कहा गया है कि शस्त्र उसका

छेदन नहीं कर सकते। आग उसे जला नहीं सकती, जल उसे भिगोकर गला नहीं सकता, वायु उसे सुखा नहीं सकती, किसी भी शक्तिशाली मन्त्र या रासायनिक प्रयोग से आत्मा का विनाश नही हो सकता। शरीर अवश्य कटता है, जलता, सूखता या नष्ट होता है।

इसे `अक्षय' इसलिए कहा गया है कि आत्मा का कभी क्षय नहीं होता, वह, भूतकाल में जितना या उतना था उतना ही आज है। आगे भी रहेगा। शरीर में अवश्य हानि वृद्धि होती है, आत्मा में नहीं?

आत्मा को `ध्रुव' इसलिए कहा गया है कि पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा से वह कर्मवश सिंह, हाथी मनुष्य, देव नारक आदि नाना पर्याय धारण करता है। किन्तु द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा से द्रव्य रूप में वह स्थायी रहता है।

इसे `नित्य' इसलिए कहा गया है कि आत्मा द्रव्यार्थिक नय की दृष्टि से नित्य एक सा रहता है। किन्तु पर्यायार्थिक नय की दृष्टि से वह नाना पर्यायें धारण करता है इसलिए अनित्य भी हैं।

इसके अतिरिक्त आत्मा की असाधारण विशेषताओं को भी जैन दृष्टि से जानना जरूरी है।

आत्मा द्रव्य की दृष्टि से नित्य है तो पर्याय की दृष्टि से अनित्य भी है।

व्यवहार नय से आत्मा कर्म का कर्ता है तो कर्म फलका भोक्ता भी है।

आत्मा को आत्मा ही ज्ञान से ग्रहण कर सकता है तथा शारिरीक चेष्टाओं के द्वारा भी आत्मा ग्रहण किया जाता है। जैसे आकाश अपने अवगाहन गुण से जाना जाता है वैसे आत्मा अपने ज्ञान गुण से जाना जाता है।

निश्चय दृष्टि से आत्मा इन्द्रियों से अगोचर शुद्ध-बुद्ध रूप तथा वर्णादि से रहित अरूपी अमुर्तिक है किन्तु व्यवहार दृष्टि से

वह कर्म से बद्ध होने के कारण तथा मुर्तिक कर्मनिधिक होने से वर्णादि सहित है।

आत्मा का शरीर के अनुसार परिमाण होता है तथा आत्मा काल की दृष्टि से अनादि अविनाशी है।

भारतीय दर्शनों में एक बौद्ध दर्शन ही अनात्मवादि है। शेष सभी दर्शन नैयायिक, वैशेषिक, सांख्य, वेदान्त, मिमांसक आदि आत्मवादी है इन सभी दर्शनों की आत्म स्वरूप के विषय में विभिन्न मान्यताएँ है।

ये दर्शन एकांतवादी है, जबकि जैन दर्शन अनेकांतवादी है!

प्राचीन काल में यह मान्यता थी कि जिसे परमात्मा पर विश्वास-आस्था नहीं वह आस्तिक नही हो सकता। परन्तु वर्तमान में यह मान्यता अधिक प्रचलित है और जैन दर्शन मान्य भी है कि जो आत्मा पर विश्वास नहीं रखता वह नास्तिक है क्योंकी शुद्ध आत्मा ही परमात्मा है। आत्मा ही परमात्मा है। आत्मा को न मानने पर परमात्मा को भी माना नही जा सकेगा। परमात्मा आत्मा की ही पूर्ण विकसित उत्कृष्ट एवं शुद्ध अवस्था है।

आत्मा पर विश्वास न करके केवल इश्वर, गॉड, खुदा ये देवी-देवों पर विश्वास करने से मानव अपना समग्र जीवन इसी प्रकार व्यर्थ खो देता है। इश्वर पर विश्वास रखकर भी तथाकथित धर्म सम्प्रदायानुयायी लोग आत्म द्रोह करते रहते हैं। अतः केवल ईश्वर विश्वास को ही उत्कृष्ट आस्था कहना आस्था का उपहास है।

इसिलीए स्वामी विवेकानन्द ने कहा था – प्राचीन काल में यह माना जाता था कि जिसे इश्वर में विश्वास नहीं, वह आस्तिक नहीं हो सकता परन्तु यह मान्यता अब स्वीकृत की गई है जो आत्मा पर विश्वास नहीं रखता उसे आस्तिक नही कहा जा सकता। वह एक प्रकार से नास्तिक है। आत्मा के प्रति आस्था गवाँकर आस्तिक बने रहने की बात सोचना महज ढोंग है।

जिसमें आत्मा के प्रति आस्था कूट-कर भरी होती है। वह आत्मा के वास्तविक स्वरूप को सैद्धान्तिक दृष्टि से जानता-मानता है, फलतः वह किसी भी आत्मा (प्राणी) से डरता-घबराता नहीं क्योंकी वह समझता है कि जैसे मेरी आत्मा है, वैसी ही इसकी आत्मा है। इसकी आत्मा पर कर्मों के विविध आवरण होने के कारण यह अज्ञान वश भले ही मेरे शरीर को कष्ट दे ले, किन्तु मेरी आत्मा को जरा भी आँच नहीं पहुँचा सकता।

आत्मवाद को मानने से सबसे बडा लाभ यह है कि मनुष्य शरीर इन्द्रिय का कुटुम्ब परिवार, धन सम्पत्ति, आदि पर भावों से अपनी आत्मा को पृथक् मानकर भेद विज्ञान का प्रयोग करने में नहीं हिचकिचाता! शरीर से सम्बन्धित पदार्थों पर से ममत्व छोडने और म्यान को तलवार से अलग करने की तरह इन पर पदार्थों से आत्मा को अलग करने की शक्ति आ जाती है। यह चमत्कार भी आत्मवाद का है।

स्वरूप की दृष्टि से संसार की सभी आत्माएँ एक समान है, ऐसी उत्कृष्ट आस्था में ही आत्मवाद के बीज छिपे हैं इस सूज के अनुसार आत्मवादी अपने नित्त् से दूसरों को जरा सा भी दुःख कष्ट या पीडा देने से हिचकिचाता है। दूसरे की किसी भी प्रकार की हिंसा की जाने पर जैसी उसको अनुभूति आत्मवादी को होती है। उसकी रग-रग में यह आस्था मुखरित होती है कि दूसरे को दुःख देना अशुभ कर्मबन्ध करके अपनी आत्मा (स्वयं) को दुःख में डालना है।

जो आत्मवाद में आस्थावान है, वह परमात्मा के प्रति अवश्य आस्थावान होगा। क्योंकि आत्मा का चरमोत्कृष्ट रूप ही परमात्मा है! अथर्ववेद में भी कहा गया है —

``ये पुरुये ब्रह्मबिन्दुः ते विदुः परमेष्टिनम्''

जो पुरुष आत्मा को जान लेते है, वे परमात्मा को भी जान

जाते है! आत्मा का अत्यन्त शुद्ध रूप ही परमात्मा का अत्यन्त शुद्ध रूप ही परमात्मा है इसलिए परमात्मा पर विश्वास उतना ही आवश्यक है, जितना आत्मा पर! आत्मा को मानकर भी जो व्यक्ति परमात्मा को नहीं मानता उसका उत्तरोत्तर आध्यात्मिक विकास नही हो पाता। अगर उसे वीतरागता या सर्व कर्म मुक्ति का लक्ष्य प्राप्त करना है तो उसे वीतराग परमात्मा अरिहन्त या सिद्ध प्रभु को आदर्श रूप में सामने रखना ही होगा।

जो साधक तीव्रता से अपनी श्रद्धा भक्ति, विश्वास एवं अनन्य निष्ठा द्वारा अपनी मलिनताएँ आत्म शक्ति पाकर हटा लेता है। और परमात्मा को अपने हृदय में बिराजमान कर लेता है। उस पर परमात्मा की महान शक्ति का अनुग्रह बरसता है।

परमात्मा के साथ भावात्मक समीपता से ही साधक उनके विशिष्ट गुणों से लाभान्वित हो सकता है। तथा जितना-जितना भावात्मक सामीप्य या तादत्म्य वह साध लेगा, आराध्य देवाधिदेव की शक्तियाँ, क्षमताएँ और सामर्थ्य उसी अनुपात में उसके अन्दर आती जाएँगी। शीत के कष्ट से थर-थर काँपते हुए व्यक्ति के लिए जैसे अग्नि की निकटता उपयोगी होती है वैसे ही वीतराग परमात्मा के साथ जितनी भावात्मक निकटता होगी उतना ही वह साधक उनके प्रकाश से प्रकाशित होता रहेगा, उसमें दुर्गुणों परभावों या अज्ञान का अन्धकार भाग जायेगा। यह परमात्मा के प्रति उत्कृष्ट आस्था का लाभ है, जो आत्मवाद को जानने और मानने से प्राप्त होता है।

प्रस्तुत ग्रन्थ और ग्रन्थकार

परम विदुषी महासती डॉ. तरूलताबाई पी.एचडी. स्थानकवासी जैन परम्परा की एक पूर्ण प्रतिभा सम्पन्न साध्वी है। उन्होंने श्रीमद् राजचन्द्र, कबीर, आनन्दघन और बनारसीदास पर तुलनात्मक दृष्टि से शोध प्रबन्ध लिखकर अपनी उत्कृष्ट प्रतिभा का परिचय दिया है।

प्रवचन एक कला है। यह कला इतनी महत्त्वपूर्ण है कि श्रोताओं के अन्तर्मन को झकझोर देती है। प्रत्येक व्यक्ति बोलता है किन्तु वह वक्ता नही होता। वक्ता तो दस हजार व्यक्ति में एकाध व्यक्ति ही होता है। जिसकी वाणी में जादू होता है जो अपने चिन्तन के प्रवाह में श्रोताओं को प्रवाहित करने की अद्भूत क्षमता रखता है। चाहे साक्षर हो चाहे निरक्षर हो, चाहे युवक हों चाहे युवतियाँ हों, चाहे वृद्ध हो चाहे बालक हो, सभी समान रूप से प्रभावित होते हैं। नीरस से नीरस विषय भी सरस रूप में प्रस्तुत करने की कला में वक्ता निष्णात होता है जिससे श्रोता ऊबते नहीं, थकते नहीं!

महासती श्री तरूलताबाई को प्रवचन कला जन्मजात प्राप्त है। उनकी वाणी में अपूर्व माधुर्य के साथ ही चिन्तन का ऐसा सुमेल समन्वय हुआ है कि श्रोता, प्रवचन सुनते-सुनते आनन्द के सागर पर तैरने लगते है। आत्मा, परमात्मा पुनर्जन्म आदि शुष्क विषयों पर भी जब वे प्रवचन करती है तो वे प्रवचन इतने सरस, सरल बन जाते है, कि श्रोताओं को भाररूप प्रतीत नहीं होते।

आत्म सिद्धि, अध्यात्म योगी श्रीमद् राजचन्द्र की एक अद्भुत और अनूठी कृति है। उस लघु कृति में आत्मवाद की ऐसी सरस चर्चा की है, जो चर्चाएँ दार्शनिक मनीषी विराटकाय ग्रन्थो में करते रहे है। हजारों पृष्ठ की चर्चाओं को कुछ पंक्तियों में अंकित करना लेखिका की अपनी विशेषता है। आत्म सिद्धि ग्रन्थ को आधार बनाकर महासतीजीने जो प्रवचन किये हैं वे प्रवचन वस्तुतः बहुत ही अद्भुत व अनूठे हैं। आत्म सिद्धि पर इतने विस्तार से विवेचन कर महासतीजीने अपने गम्भीर पाण्डित्य को प्रदर्शित किया है। उनका विस्तृत अध्ययन इन ग्रन्थो में सहज रूप से निराहा जा सकता है।

गुर्जर भाषा-भाषी महानुभाव महासतीजी की प्रतिभा से परिचित रहे हैं उन्हें उनके मंगलमय प्रवचनों को सुनने का

सौभाग्य मिला है। ठीक वैसे ही हिन्दी भाषा-भाषियों के लिए भी उनका परिचय उतना ही रहा क्योंकि महासतीजी का अध्ययन हिन्दी भाषा के माध्यम से ही हुआ, तथा उनका मुख्य विचरण क्षेत्र गुजरात, महाराष्ट्र, बिहार, बंगाल, ओरिसा, मध्यप्रदेश, तामिलनाडु, कर्णाटक, आंध्र एवं बम्बई आदि प्रान्त रहे है। महासतीजी अब हिन्दी भाषा में प्रवचन देती हैं तब, उनके मुखसे वाणी का प्रवाह ऐसा अस्खलित बहता है कि सुननेवाले दंग रह जाते हैं। समझ नही पाते कि महासतीजी की मातृभाषा गुजराती है या हिन्दी!! मद्रास में उनके अनेक वर्षावास हुए। मद्रास संघ के जाने-माने प्रबुद्ध चिन्तक श्री सुरेन्द्रभाई महेताने इन प्रवचनों को लिपिबद्ध करवाया। पहले गुजराती भाषा में प्रकाशित करवाए और अब उन प्रवचनों का राष्ट्र भाषा हिन्दी में अनुवाद प्रकाशित हो रहा है। मैं इस प्रशस्त प्रयास की अनुमोदना करता हूँ। मुझे पूर्ण आत्म विश्वास है कि प्रस्तुत ग्रन्थ प्रबुद्ध पाठकों को नया चिन्तन प्रदान करेगा! भौतिकवाद की आँधी में मानव प्रतिपल प्रतिक्षण बहिर्मुखी होता जा रहा है, वह अपने आपको भूल रहा है कि मैं कौन हूँ? मेरा स्वरूप क्या है। आदि ज्वलन्त प्रश्नों का सही समाधान प्रस्तुत ग्रन्थों में प्राप्त होगा। ये प्रवचन अपने आपको समजने के लिए प्रकाशस्तम्भ की तरह उपयोगी होंगे। इन प्रवचन ग्रन्थो का सर्वत्र स्वागत होगा। अध्यात्म प्रेमियों के लिए यह एक सुनहरा उपहार है। इस उपहार को पाकर वे अपने आपको धन्य-धन्य अनुभव करेंगे।

जैन उपाश्रय बुरहानपुर
मध्यप्रदेश
१६ मई १९८८

उपाचार्य देवेन्द्रमुनि

पू. डॉ. तरुलताजीका परिचय

सूर्य का परिचय नहीं दिया जाता! उसका प्रकाश ही उसका परिचय है। उसकी उष्मा ही उसका परिचय है। उसके अनेक गुण ही उसका परिचय है। जो बातें सूर्य के लिए सच हैं, वे व्यक्ति के लिए भी उतनी ही सच हैं, उसके गुण ही उसकी पहचान है! गुणों से परिपूर्ण व्यक्तित्व ही उसका सही परिचय है!

परम् श्रद्धेय पू. तरुलताबाई महासतीजीका परिचय उनके व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं को प्रस्फुटित करता हुआ उनका जीवन, जिसमें उनका गहन अध्ययन, विद्वतापूर्ण अध्यात्म अभिमुख लेखन, संवेदनशील उर्मिल कथन, जिनेश्वरदेव प्ररूपित वचनों की अभिव्यक्ति के व्याख्यानों एवं उन सब में प्रतिविम्बित होने वाला आध्यात्मिक अभिगम है।

१८ वर्ष की युवा उम्र में, पूर्व जन्म के संस्कार जागृत हो उठे एवं पिताश्री वनमालीदास वेलजी ठोसाणी तथा मातुश्री शांता बहन ही मंगलकारी पुत्री, नवीनभाई एवं पुष्पाबहन नगीनदास देसाई, मधुबहन विनोदराय गांधी तथा वर्षाबहन शाह की लाडली बहन श्री तरुलताबहन परमोपकारी गुरुदेव श्री रतिलालजी महाराज साहेब के स्वमुख से, वात्सल्यमयी गुरुणीमैया ललिताबाई महासतीजी के पास सम्वत २०१४ फागुन सुद-२ को दीक्षा लेकर विहार शुरू किया और इसके साथ ही उनकी आराधना यात्रा शुरू हुई। दीक्षा के बाद बहुत थोडे वर्षों में उनकी विद्या उपार्जना की आकांक्षाओं के फलस्वरूप जैन धर्म के शास्त्र तथा आगमों का विशद् अध्ययन किया। गुरुणी मैया तथा सुश्रावक समुदाय की इच्छाओं को शिरोमान्य रखकर हिन्दी साहित्य में M.A. किया। सच्चे विद्यार्थी के लिए सुशोभित हो इस तरह से बढ रहे विद्याभ्यास के साथ उनकी ज्ञान पिपासा अधिक तीव्र बनती गई। प्राप्त ज्ञान से 'ज्ञेय' की विराटता का दर्शन कराया और साथ ही ज्ञानोपार्जन में और गहरी उतरने लगी। जैन धर्म का संस्कार एवं जिनेश्वरदेव प्ररूपित जैन धर्ममें गहरी आस्था के कारण जैन दर्शन के स्याद्वाद अनेकांतबाद से प्रभावित हुई और उससे भी आगे बढकर कहें तो अहिंसा के सूक्ष्म सिद्धांतों की अनुभूति से उनका मन उसमें ही रमा रहा। तीक्ष्ण प्रतिभा की स्वामिनी महासतीजी को धर्म के

सिद्धांतों के सनातन स्वभाव की Universal Nature Of Religion निरंतर प्रतीति रहती थी। इस विषय को जनसमुदाय के समक्ष प्रस्तुत करने की भावना से प्रेरित होकर, उन्होंने जिनके साहित्य में आध्यात्म का प्राधान्य है ऐसे जैन तथा जैनेतर संतों के साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन किया। संत कवि बनारसीदासजी, आत्मरत आनन्दघनजी, संत कबीर तथा युगपुरुष श्रीमद्राजचन्द्रजी के साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन उनके डॉक्टरेट के लिए शोध महाप्रबंध Doctorate Thesis का विषय रहा। संत कवियों के साहित्यके गहन तुलनात्मक अध्ययन के साथ उसमें अभिन्न रूप से वर्णित आध्यात्मिक अभिगम उनके अपने व्यक्तित्व में साकार होने लगा। उनके विचारों में, व्याख्यानों में तथा लेखन में तत्त्व ज्ञान का प्राधान्य प्रगट होने लगा एवं स्वाभाविक तौर पर प्रखर तत्ववेत्ता का विशेषण उनके नाम का एक अविभाज्य अंग बन गया। पू. महासतीजी के नाम के साथ `प्रखरवेत्ता' न लगा हो तो मानों नाम ही अधूरा हो अथवा किसी अन्य व्यक्ति का संबोधन हो ऐसा लगने लगा। ``तत्वज्ञान एवं तरुलताजी'' मानों एक दूसरे के पर्यायवाची शब्द बन गये आप के हाथों में प्रस्तुत यह ग्रंथ उपरोक्त शब्दों की यथार्थता की प्रतीति करायेगी।

प.पू. महासतीजी के आध्यात्मिक विकास में जिनके अनुग्रह तथा ऋण की, उन्हें सतत प्रतीति रहती है उनमें, वात्सल्यमूर्ति प.पू.बा.ब्र. ललिताबाई महासतीजी बापजी प.पू. जगजीवनजी म. साहेब जिन्होंने २००४ में राजगृही के पवित्र तीर्थस्थान में अनशन किया। उनके ४५ दिन के अनशन के दौरान उनकी सेवा का लाभ प्राप्त हुआ। इस समय दौरान पू. गुरुदेव का देहाध्यास छूटने पर निष्पन्न वीतराग दशा की स्मृतियोंने पू. महासतीजी के आध्यात्मिक विकास में प्रेरणा का सिंचन किया। परम श्रद्धेय प्रेरणामूर्ति गुरुदेव जयंतमुनि महाराज साहेब जिन्होंने ``तन सेवा में तथा मन आध्यात्म में'' सूत्र को चारितार्थ करते हुए बिहार के आदिवासियों के बीच सेवा तथा अध्यात्म का अलख जगा कर बैठे हैं। प.पू. संत बालजी जिनके विचारों तथा साहित्य की एक अमिट असर उनपर रही है। भारत वर्ष की सांस्कृतिक अस्मिता के ज्योतिर्धर स्वामी विवेकानन्द जिनके आर्य जीवनदर्शन की तथा उनके गुरू रामकृष्ण परमहंस के नीर-क्षीर विवेक से आध्यात्मिक विशिष्ट भेद विज्ञान

की अनुभूति से उद्भवित अलौकिक उच्च आत्मिक अवस्था से अत्यन्त प्रभावित रही हैं तथा अर्वाचीन संत रमण महर्षि जिनके परोक्ष सानिध्य से भी सत्-तत्व में लीन हुई। उनके सनातन प्रश्न ``मै कौन हूँ'' के गुंजन की अनुभूति के असर में इस पुस्तक का शीर्षक ``मैं आत्मा हूँ'' उद्भवित हुआ है।

प.पू. महासतीजी ने अपने सुदीर्घ दीक्षाकाल दौरान गुजरात, मुंबई, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, बिहार, बंगाल, आंध्र, तामिलनाडु, कर्नाटक वगैरह प्रदेशों में विचरणकर बृहद् जनसमुदाय को अपने अगाध ज्ञान का लाभ प्रदान किया है।

पू. महासतीजीने महावीरनगर आंतरराष्ट्रिय केन्द्र चींचणी में दो चातुर्मास दौरान मुनिश्री संतबालजीके अप्रगट साहित्य के संशोधन-संपादन कार्य में सहयोग दिया। पूज्य मुनिश्रीकी विचारधारा को आगे चलानेके लिए सर्वधर्म समभाव संमेलन किया।

१९९८ में सौराष्ट्र केसरी पूज्य प्राणलालश्री महाराज साहेबकी जन्मशताब्दी के उपलक्ष में पूज्य गुरुदेव के प्रति भावांजलि अर्पण करने हेतु `अभिवंदना ग्रंथ' का संपादन करके प्रकाशन करवाया।

देवलाली, नासिक, पूना, मुंबई, गुजरात (धारी) वि. चातुर्मास दौरान पूज्यश्रीने प्रेक्षाध्यान, मुद्राविज्ञान, योगविज्ञान आदि शिबिर करवाके युवानों को आध्यात्म की नई दिशा दी।

प.पू. महासतीजी बहुमुखी प्रतिभा की स्वामिनी हैं। गहन अध्ययन तथा विषय का बृहद् निरूपण आप की तीक्ष्ण बुद्धि प्रतिभा के फलस्वरूप आप के हर कार्य में दृष्टिगोचर होता है। उसके साथ ही कवि हृदय की संवेदनशीलता, ऋजुता आध्यात्म की असर के अंतर्गत मनन-चिंतन एवं उसमें प्रगट होने वाली आतुरता, भाषा पर अनन्य प्रभुत्व, उनकी रचनाओं को अध्ययन करने तथा उपभोग करने योग्य बनाता है। ४१ पंक्तियों की उनकी सुन्दर रचना ``कारवाँ'', आध्यात्मिक अनुभूति के लिए आतुरता महसूस कर रहे साधक जीव की मनोदशा का सुन्दर शब्द चित्र है। उनके साहित्य में प्राण तथा प्रकृति की अभिन्नता की झलक है। उन्हें नैसर्गिक सौंदर्य को शब्दों में मढने की विलक्षणता प्राप्त है। मार्मिक कटाक्ष उनकी रचनाओं का उपभोग योग्य पहलू है।

ऐसी वात्सल्यमूर्ति परम श्रद्धेय पू. तरुलताबाई महासतीजी के श्री चरणों में कोटिशः वंदन।

आत्म तत्त्व विचार

हर्ष की बात है कि, परम पूज्य महासतीजी श्री तरुलताबाई स्वामी ने सम्वत् २०४१ के चातुर्मास के दौरान मद्रास में व्याख्यान के लिए कृपालु देव श्रीमद् राजचन्द्र के ``आत्म सिद्धि शास्त्र'' ग्रंथ को पसन्द किया।

एक स्थल से अन्य स्थल तक विहार करने वाले जैन साधु-साध्वियाँ चातुर्मास के चार महीनों के दौरान किसी भी एक स्थान पर स्थिर रहते हैं। चातुर्मास में रोज सुबह उनका नियमित व्याख्यान होता है। नित नये-नये विषयों का पुनरावर्तन न हो, इस प्रकार प्रस्तुत करने की व्याख्यान कला सरल नही है। व्याख्यान के विषयों के आधार के तौर पर एक या दो ग्रंथों को पसंद किया जाता है। उत्तराध्ययन सूत्र, दशवैकालिक, ज्ञाता धर्मकथा, कल्प सूत्र, योग दृष्टि समुच्चय, समरादित्य कथा, योग शास्त्र, ज्ञानसार वगैरह अनेक विभिन्न ग्रंथों से अपनी रुचि एवं शक्ति के अनुसार, किसी भी ग्रंथ की पसंदगी होती है। ग्रंथ जितना छोटा उतना ही व्याख्यान में उसका विस्तार करने की शक्ति एवं कला का होना विशेष आवश्यक है।

प.पू. तरुलताबाई महासतीजीने १४२ दोहे की एक छोटी कृति ``आत्मा सिद्धि शास्त्र'' पसंद की। यह हमें उनकी व्याख्यान की शक्ति एवं प्रस्तुति कला की स्पष्ट प्रतीति कराता है। ``आत्म सिद्धि शास्त्र'' पर व्याख्यान देना सरल बात नहीं है। अध्यात्म का रहस्य प्रकट करते हुए श्रोताओं को विषय की गहराई में, ले जाने का कार्य सरल नहीं है। विषयांतर करके समय व्यतीत तो सभी लोग कर सकते हैं। परन्तु सूक्ष्म अर्थ विवेचन करने के लिए विशाल वांचन, गहन अध्ययन, गहन चिंतन एवं आध्यात्मिक अनुभूति की आवश्यकता है। प.पू. स्व. तत्वानंद विजयजी महाराज चातुर्मास के व्याख्यानों के लिए कभी-कभी केवल नवकार मंत्र ही पसंद करते एवं चार महीने नवकार मंत्र के नौ पदौं पर रोज नयी-नयी दृष्टि से नया-नया अर्थ विस्तृत करते। वे श्रोताओं में प्रमाद न आये इस तरह

रोचक शैली द्वारा ऐसा सरस प्रस्तुतिकरण करते कि उन्हें सुनने के लिए काफी लोग एकत्रित हो जाते।

प.पू. तरुलताबाई महासतीजीने मुंबई युनिवर्सिटी से Ph.D. की पदवी प्राप्त की। उन्होंने अध्ययन के विषय के रूप में राजचन्द्र, आनन्दघनजी, बनारसीदास, एवं संत कबीर जैसे महान तत्त्ववेत्ताओं को पसन्द किया। इससे उनकी रुचि का क्षेत्र आध्यात्मिकता की कैसी ऊँची भूमिका पर रहा है, वह समझ में आ जाता है। इन चारों महात्माओं ने सम्प्रदाय एवं गच्छ की परिधि से बाहर निकल कर शुद्ध परम तत्त्व की उपासना की थी। उनकी आध्यात्मिक अनुभूति उच्च कोटि की थी। उनका साहित्य गहन, मार्मिक एवं रसयुक्त है। प.पू. तरुलताबाई महासतीजीने श्रीमद्राजचन्द्र के साहित्य का सघन अध्ययन किया है। इसलिए ``आत्म सिद्धि शास्त्र'' पर व्याख्यान देने के लिए वे सर्वथाविशेष आधिकारिणी हैं।

श्रीमद्राजचन्द्रजीने १९ वर्ष की अल्प आयु में ``आत्म सिद्धिशास्त्र'' नामक मात्र १४२ गाथा की कृति की रचना की। विक्रम सम्वत् १९५२ में आसोवद एकम की शाम, नडियाद में उन्होंने केवल डेढ दो घन्टे के अल्प समय में इसकी रचना की जो सिद्ध करता है कि उनकी विचारधारा कितनी स्पष्ट थी एवं शब्दों पर उनका प्रभुत्व कैसा असाधारण एवं अद्वितीय था। जहाँ जो शब्द चाहिए, वहाँ वह शब्द रखा। ऐसी असाधारण कवि प्रतिभा उनके पास थी। यह कृति इतनी सुरेख एवं संश्लिष्ट है कि, इतने वर्षों के बाद भी ``आत्मसिद्धिशास्त्र'' शास्त्र का एक शब्द भी इधर-उधर करने का दिल नहीं होता।

श्रीमद्जीने आत्मसिद्धि शास्त्र में शुद्ध आत्मबल पर विशद् विचार किया है। श्रीमद् लिखते हैं —

आत्मा छे, ते नित्य छे, छे कर्ता निज कर्म;
छे भोक्ता वळी मोक्ष छे, मोक्ष उपाय सुधर्म।

श्रीमद् ने सरल वाणी द्वारा ऐसा सुन्दर प्रकाश प्रकाशित किया है कि, आत्मा के इन छः पदों पर भव्य जीवों को सद्बोध

हो जाये। जिन्होंने आत्मार्थी एवं मतार्थी के लक्षणों को स्पष्ट किया है और आत्मार्थी को विचार करने के लिए मोक्षमार्ग दर्शाया है, और इस मार्ग में प्रत्यक्ष सद्गुरु का महत्व कितना है, उसे भी समझाया है। जिससे ``आत्मसिद्धि'' की रचना एक शास्त्र बन गई है। जैन दर्शन के नव तत्त्व, षड् द्रव्य, आठ कर्म, चौदह गुणस्थान, छः लेश्या वगैरह अनेक शास्त्रीय विषय हैं। जो मोक्ष मार्ग को समझाने में उपकारक एवं आवश्यक हैं। उसे समझने के लिए शास्त्रों की पारिभाषिक जटिलता में उतरे बिना सरल बोध ग्रहण करने के लिए ``आत्मसिद्धि शास्त्र'' अमोघ साधन है।

श्रीमद्राजचन्द्रजी ज्ञानी थे, एवं परम उच्च आत्मदशा में रहते थे। वे परम वंदनीय थे। ``आत्मसिद्धि शास्त्र'' में देह एवं आत्मा की भिन्नता के विषय में उनके द्वारा लिखित पंक्तियाँ उनके लिए भी अनुरूप हैं।

``देह छता जेनी दशा वर्ते देहातीत;
ते ज्ञानीना चरणमां, हो वंदन अगणित।''

श्री तरूलताबाई महासतीजीने कुल १०७ प्रकरणों में आत्मसिद्धि शास्त्र की गाथाओं पर तात्विक प्रकाश डाला है। प्रत्येक गाथा में महत्वपूर्ण अर्ध-चरण लेकर, उसमें से कोई महत्वपूर्ण अर्थगर्भ को पसंद करके उस शब्द का अर्थ, विस्तार सहित समग्र गाथा का भाव सरल एवं सुबोध भाषा में उसी शैली से दृष्टांत सहित समझाया है। उसे समझाने में शास्त्रीय भाषा के उपयोग सहित तत्व विचार या भाव का पृथक्करण करके, यदि उसके उपविभाग हैं तो, उस समझाकर अपनी निर्मल आत्मानुभूति की साक्षी द्वारा उसका परम एवं गहन मर्म दर्शाया है जो ऐसा है कि आत्मार्थी जीवों के हृदय में तुरन्त बस जाये। स्व में हितकारी समान आत्मा प्रकाश प्रकट नहीं होता। ऐसे उत्तम तत्वपूर्ण व्याख्यानों के लिए हम सब हमेशा उनके चिर ऋणी रहेंगे। हमें आशा है कि, उनके इन व्याख्यानों से हम सब को प्रेरणा मिलती रहेगी।

रमणलाल शाह
बम्बई

श्री सद्गुरवे नमो नमः

आत्मसिद्धि शास्त्र

जे स्वरूप समज्या विना, पाम्यो दुःख अनंत;
समजाव्युं ते पद नमु, श्री सद्गुरु भगवंत । १

वर्तमान आ कालमां, मोक्ष मार्ग बहु लोप;
विचारवा आत्मार्थीने, भाख्यो अत्र अगोप्य । २

कोई क्रियाजड थई रह्या, शुष्कज्ञानमां कोई;
माने मारग मोक्षनो, करुणा उपजे जोई । ३

बाह्य क्रियामां राचता, अन्तर भेद न कोइ;
ज्ञानमार्ग निषेधता, तेह क्रियाजड आंई । ४

बंध मोक्ष छे कल्पना, भाखे वाणी मांही;
वर्ते मोहावेशमां, शुष्क ज्ञानी ते आंही । ५

वैराग्यादि सफल तो, जो सह आतमज्ञान;
तेम ज आतमज्ञाननी, प्राप्तितणां निदान । ६

त्याग विराग न चित्तमां, थाय न तेने ज्ञान;
अटके त्याग विरागमां, तो भूले निजभान । ७

ज्यां ज्यां जे जे योग्य छे, तहां समजवुं तेह;
त्यां त्यां ते ते आचरे, आत्मार्थी जन अेह । ८

सेवे सद्गुरुचरणने, त्यागी दई निजपक्ष;
पामे ते परमार्थने निजपदनो ले लक्ष । ९

आत्मज्ञान समदर्शिता, विचरे उदय प्रयोग;
अपूर्व वाणी परमश्रुत, सद्गुरु लक्षण योग्य । १०

प्रत्यक्ष सद्गुरु सम नहि, परोक्ष जिन उपकार;
एवो लक्ष थया विना, ऊगे न आत्मविचार । ११

सद्गुरुना उपदेश वण, समजाय न जिनरूप;
समज्या वण उपकार शो? समज्ये जिनस्वरूप । १२

आत्मादि अस्तित्वनां, जेह निरूपक शास्त्र;
प्रत्यक्ष सद्गुरुयोग नहीं, त्यां आधार सुपात्र । १३

अथवा सद्गुरुए कह्यां, जे अवगाहन काज;
ते ते नित्य विचारवां, करी मतांतर त्याज । १४

रोके जीव स्वच्छंद तो, पामे अवश्य मोक्ष;
पाम्या एम अनंत छे, भाख्युं जिन निर्दोष । १५

प्रत्यक्ष सद्गुरु योगथी, स्वच्छंद ते रोकाय;
अन्य उपाय कर्या थकी, प्राये बमणो थाय । १६

स्वच्छंद मत आग्रह तजी, वर्ते सद्गुरुलक्ष;
समकित तेने भाखियुं, कारण गणी प्रत्यक्ष । १७

मानादिक शत्रु महा, निजछंदे न मराय;
जातां सद्गुरु शरणमां, अल्प प्रयासे जाय । १८

जे सद्गुरु उपदेशथी, पाम्यो केवळज्ञान;
गुरु रह्या छद्मस्थ पण, विनय करे भगवान । १९

एवो मार्ग विनय तणो, भाख्यो श्री वीतराग;
मूळ हेतु ए मार्गनो, समजे कोई सुभाग्य । २०

असद्गुरु ए विनयनो, लाभ लहे जो कांई;
महामोहनीय कर्मथी, बूडे भवजळ मांही । २१

होय मुमुक्षु जीव ते, समजे एह विचार;
होय मतार्थी जीव ते, अवळो ले निर्धार । २२

होय मतार्थी तेहने, थाय न आतमलक्ष;
तेह मतार्थी लक्षणो, अहीं कह्या निर्पक्ष । २३

मतार्थी-लक्षण

बाह्यत्याग पण ज्ञान नहि, ते माने गुरु सत्य;
अथवा निजकुलधर्मना, ते गुरुमां ज ममत्व । २४

जे जिनदेहप्रमाण ने, समवसरणादि सिद्धि;
वर्णन समजे जिननुं, रोकी रहे निज बुद्धि । २५

प्रत्यक्ष सद्गुरुयोगमां, वर्ते दृष्टि विमुख;
असद्गुरुने दृढ करे, निजमानार्थे मुख्य । २६

देवादि गति भंगमां जे समजे श्रुतज्ञान;
माने निजमतवेषनो, आग्रह मुक्तिनिदान । २७

लह्युं स्वरूप न वृत्तिनुं ग्रह्युं व्रत अभिमान;
ग्रहे नही परमार्थने, लेवा लौकिक मान । २८

अथवा निश्चय नय ग्रहे, मात्र शब्दनी मांय;
लोपे सद्व्यवहारने, साधन रहित थाय । २९

ज्ञानदशा पामे नहीं, साधनदशा न कांई;
पामे तेनो संग जे, ते बूडे भवमांही । ३०

ए पण जीव मतार्थमां, निजमानादि काज;
पामे नहि परमार्थने, अन्-अधिकारीमां ज । ३१

नहि कषाय उपशांतता, नहि अंतर वैराग्य;
सरलपणुं न मध्यस्थता, ए मतार्थी दुर्भाग्य । ३२

लक्षण कह्यां मतार्थीनां, मतार्थ जावा काज;
हवे कहुं आत्मार्थीनां; आत्म-अर्थ सुखसाज । ३३

आत्मार्थी-लक्षण

आत्मज्ञान त्यां मुनिपणुं, ते साचा गुरु होय;
बाकी कुलगुरु कल्पना, आत्मार्थी नहि जोय । ३४

प्रत्यक्ष सद्गुरु प्राप्तिनो, गणे परम उपकार;
त्रणे योग एकत्वथी, वर्ते आज्ञाधार । ३५

एक होय त्रण कालमां, परमारथनो पंथ;
प्रेरे ते परमार्थने, ते व्यवहार समंत । ३६

एम विचारी अंतरे, शोधे सद्गुरु योग;
काम एक आत्मार्थनुं, बीजो नहि मनरोग । ३७

कषायनी उपशांतता, मात्र मोक्ष अभिलाष;
भवे खेद प्राणीदया, त्यां आत्मार्थ निवास । ३८

दशा न एवी ज्यां सुधी, जीव लहे नहि जोग;
मोक्षमार्ग पामे नहीं, मटे न अन्तर रोग । ३९

आवे ज्यां एवी दशा, सद्गुरुबोध सुहाय;
ते बोधे सुविचारणा, त्यां प्रगटे सुखदाय । ४०

ज्यां प्रगटे सुविचारणा, त्यां प्रगटे निजज्ञान;
जे ज्ञाने क्षय मोह थइ, पामे पद निर्वाण । ४१

ऊपजे ते सुविचारणा, मोक्षमार्ग समजाय;
गुरुशिष्य संवादथी, भाखुं षटपद आंही । ४२

षट्पदनामकथन

'आत्मा छे', 'ते नित्य छे', 'छे कर्ता निजकर्म';
'छे भोक्ता' वळी 'मोक्ष छे, मोक्ष उपाय सुधर्म'। ४३

षटस्थानक संक्षेपमां, षटदर्शन पण तेह;
समजावा परमार्थने, कह्यां ज्ञानीए एह । ४४

शंका-शिष्य उवाच

नथी दृष्टिमां आवतो, नथी जणातुं रूप;
बीजो पण अनुभव नहीं, तेथी ज जीवस्वरूप । ४५

अथवा देह ज आत्मा, अथवा इन्द्रिय प्राण;
मिथ्या जुदो मानवो, नहीं जुदुं एंधाण । ४६

वळी जो आत्मा होय तो, जणाय ते नहि केम?
जणाय जो ते होय तो, घट पट आदि जेम । ४७

माटे छे नहि आतमा, मिथ्या मोक्ष उपाय;
ए अंतर शंकातणो, समजावो सदुपाय । ४८

समाधान-सद्गुरु उवाच

भास्यो देहाध्यासथी, आत्मा देह समान;
पण ते बन्ने भिन्न छे, प्रगट लक्षणे भान । ४९

भास्यो देहाध्यासथी, आत्मा देह समान;
पण ते बन्ने भिन्न छे, जेम असि ने म्यान । ५०

जे द्रष्टा छे दृष्टिनो, जे जाणे छे रूप;
अबाध्य अनुभव जे रहे, ते छे जीवस्वरूप । ५१

जे इंद्रिय प्रत्येकने, निज निज विषयनुं ज्ञान;
पांच इन्द्रिना विषयनुं, पण आत्माने भान । ५२

देह ने जाणे तेहने, जाणे न इन्द्री प्राण;
आत्मानी सत्ता वडे, तेह प्रवर्ते जाण । ५३

सर्व अवस्थाने विषे, न्यारो सदा जणाय;
प्रगटरूप चैतन्यमय, ए एंधाण सदाय । ५४

घट, पट आदि जाण तुं, तेथी तेने मान;
जाणनार ते मान नहि, कहीए केवुं ज्ञान? ५५

परम बुद्धि कृश देहमां, स्थूल देह मति अल्प;
देह होय जो आतमा, घटे न आम विकल्प । ५६

जड चेतननो भिन्न छे केवल प्रगट स्वभाव;
एकपणुं पामे नहीं, त्रणे काल द्वयभाव । ५७

आत्मानी शंका करे, आत्मा पोते आप;
शंकानो करनार, ते अचरज एह् अमाप । ५८

शंका शिष्य-उवाच

आत्माना अस्तित्वना, आपे कह्या प्रकार;
संभव तेनो थाय छे, अन्तर कर्ये विचार । ५९

बीजी शंका थाय त्यां आत्मा नहि अविनाश;
देह योगथी ऊपजे, देहवियोगे नाश । ६०

अथवा वस्तु क्षणिक छे, क्षणे क्षणे पलटाय;
ए अनुभवथी पण नहीं, आत्मा नित्य जणाय । ६१

समाधान सद्‌गुरु उवाच

देह मात्र संयोग छे, बळी जड़ रूपी दृश्य;
चेतननां उत्पत्ति लय, कोना अनुभव वश्य? ६२

जेना अनुभव वश्य एष उत्पन्न लयनुं ज्ञान;
ते तेथी जुदा विना, थाय न केमे भान । ६३

जे संयोगो देखीए, ते ते अनुभव दृश्य;
ऊपजे नहि संयोगथी, आत्मा नित्य प्रत्यक्ष । ६४

जडथी चेतन ऊपजे, चेतनथी जड थाय;
एवो अनुभव कोइने, क्यारे कदी न थाय । ६५

कोई संयोगोथी नहि जेवी उत्पत्ति थाय;
नाश न तेनो कोईमां, तेथी नित्य सदाय । ६६

क्रोधादि तरतम्यता, सर्पादिकनी मांय;
पूर्वजन्म संस्कार ते, जीवनित्यता त्यांय । ६७

आत्मा द्रव्ये नित्य छे, पर्याये पलटाय;
बाळादि वय त्रण्यनुं, ज्ञान एकने थाय । ६८

अथवा ज्ञान क्षणिकनुं, जे जाणी वदनार;
वदनारो ते क्षणिक नहि, कर अनुभव निर्धार । ६९

क्यारे कोई वस्तुनो, केवल होय न नाश;
चेतन पामे नाश तो, केमां भले तपास । ७०

शंका शिष्य-उवाच

कर्ता जीव न कर्मनो, कर्म जो कर्ता कर्म;
अथवा सहज स्वभाव कां, कर्म जीवनो धर्म । ७१

आत्मा सदा असंग ने, करे प्रकृति बंध;
अथवा ईश्वर प्रेरणा, तेथी जीव अबंध । ७२

माटे मोक्ष उपायनो, कोई न हेतु जणाय;
कर्मतणुं कर्तापणुं, कां नहि, का नहि जाय । ७३

समाधान सद्‌गुरु उवाच

होय न चेतन प्रेरणा, कोण ग्रहे तो कर्म?
जडस्वभाव नहि प्रेरणा, जुओ विचारी धर्म । ७४

जो चेतन करतुं नथी, नथी थतां तो कर्म;
तेथी सहज स्वभाव नहि, तेम ज नहि जीवधर्म । ७५

केवल होत असंग जो, भासत तने न केम?
असंग छे परमार्थथी, पण निजभाने तेम । ७६

कर्ता ईश्वर कोई नहि, ईश्वर शुद्ध स्वभाव;
अथवा प्रेरक ते गण्ये, ईश्वर दोष प्रभाव । ७७

चेतन जो निजभानमां, कर्ता आप स्वभाव;
वर्ते नहि निजभानमां कर्ता कर्म प्रभाव । ७८

शंका शिष्य-उवाच

जीव कर्म कर्ता कहो, पण भोक्ता नहि सोय;
शुं समजे जड कर्मज्ञ के, फल परिणामी होय? ७९

फलदाता ईश्वर गण्ये, भोक्तापणुं सधाय;
एम शुभाशुभ कर्मनुं, भोक्तापणुं जणाय । ८०

ईश्वर सिद्ध थया विना, जगत नियम नहि होय;
पछी शुभाशुभ कर्मनां भोग्यस्थान नहि कोय । ८१

समाधान सद्गुरु उवाच

भावकर्म निजकल्पना, माटे चेतनरूप;
जीववीर्यनी स्फुरणा, ग्रहण करे जडधूप । ८२

झेर सुधा समजे नहीं, जीव खाय फल थाय;
एम शुभाशुभ कर्मनुं, भोक्तपणुं जणाय । ८३

एक रांक ने एक नृप, ए आदि जे भेद;
कारण विना न कार्य ते, ते ज शुभाशुभ वेद्य । ८४

फलदाता ईश्वरतणी, एमां नथी जरूर;
कर्म स्वभावे परिणमे, थाय भोगथी दूर ८५

ते ते भोग्य विशेषनां, स्थानक द्रव्य स्वभाव;
गहन वात छे शिष्य आ, कही संक्षेपे साव । ८६

शंका शिष्य उवाच

कर्ता भोक्ता जीव हो, पण तेने नहि मोक्ष;
वीत्यो काळ अंत पण, वर्तमान छे दोष । ८७

शुभ करे फल भोगवे, देवादि गतिमांय;
अशुभ करे नरकादि फल, कर्म रहित न क्यांय । ८८

समाधान सद्गुरु उवाच

जेम शुभाशुभ कर्म पद, जाण्यां सफल प्रमाण;
तेम निवृत्ति सफळतां, माटे मोक्ष सुजाण । ८९

वीत्यो काल अनंत ते, कर्म शुभाशुभ भाव;
तेह शुभाशुभ छेदतां, उपजे मोक्ष स्वभाव । ९०

देहादिक संयोगनो, आत्यंतिक वियोग;
सिद्ध मोक्ष शाश्वत पदे, निज अनंत सुख भोग । ९१

शंका शिष्य उवाच

होय कदापि मोक्षपद, नहि अविरोध उपाय;
कर्मो काल अनंतनां, शाथी छेद्यां जाय? ९२

अथवा मत दर्शन घणां, कहे उपाय अनेक;
तेमा मत साचो कयो, बने न एह विवेक । ९३

कई जातिमां मोक्ष छे, कया वेषमां मोक्ष;
एनो निश्चय ना बने, घणा भेद ए दोष । ९४

तेथी एम जणाय छे, मले न मोक्ष उपाय;
जीवादि जाण्या तणो, शो उपकार ज थाय? ९५

पांचे उत्तरथी थयुं, समाधान सर्वांग;
समजुं मोक्ष उपाय तो, उदय उदय सद्भाग्य । ९६

समाधान सद्गुरु उवाच

मोक्षनो उपाय छे, एम समाधान करे छे

पांचे उत्तरनी थई, आत्मा विषे प्रतीत;
थाशे मोक्षोपायनी, सहज प्रतीत ए रीत । ९७

कर्मभाव अज्ञान छे, मोक्षभाव निजवास;
अंधकार अज्ञान सम, नाशे ज्ञानप्रकाश । ९८

जे जे कारण बंधनां, तेह बंधनो पंथ;
ते कारण छेदक दशा, मोक्षपंथ भव अंत । ९९

राग, द्वेष, अज्ञान ए, मुख्य कर्मनी ग्रन्थ;
थाय निवृत्ति जेहथी, ते ज मोक्षनो पंथ । १००

आत्मा सत् चैतन्यमय सर्वाभास रहित;
जेथी केवळ पामिये, मोक्षपंथ ते रीत । १०१

कर्म अनंत प्रकारनां, तेमां मुख्ये आठ;
तेमां मुख्ये मोहनीय, हणाय ते कहुं पाठ । १०२

कर्म मोहनीय भेद वे, दर्शन चारित्र नाम;
हणे बोध वीतरागता, अचूक उपाय आम । १०३

कर्मबंध क्रोधादिथी, हणे क्षमादिक तेह;
प्रत्यक्ष अनुभव सर्वने, एमा शो संदेह? १०४

छोडी मत दर्शन तणो, आग्रह तेम विकल्प;
कह्यो मार्ग आ साधशे, जन्म तेहनां अल्प । १०५

षटपदनां षटप्रश्न ते, पूछ्यां करी विचार;
ते पदनी सर्वांगता, मोक्षमार्ग निरधार । १०६

जाति, वेषनो भेद नहि, कह्यो मार्ग जो होय;
साधे ते मुक्ति लहे, एमां भेद न कोय । १०७

कषायनी उपशांतता, मात्र मोक्ष अभिलाष;
भवे खेद अंतर दया, ते कहीए जिज्ञास । १०८

ते जिज्ञासु जीवने, थाय सद्गुरुबोध;
तो पामे समकितने, वर्ते अंतरशोध । १०९

मत दर्शन आग्रह तजी, वर्ते सद्गुरुलक्ष;
लहे शुद्ध समकित ते, जेमां भेद न पक्ष । ११०

वर्ते निज स्वभावनो, अनुभव लक्ष प्रतीत;
वृत्ति वहे निजभावमां, परमार्थे समकित । १११

वर्धमान समकित थई, टाले मिथ्याभास;
उदय थाय चारित्रनो, वीतरागपद वास । ११२

केवल निजस्वभावनुं, अखंड वर्ते ज्ञान;
कहीए केवलज्ञान ते, देह छतां निर्वाण । ११३

कोटि वर्षनुं स्वप्न पण, जाग्रत थतां शमाय;
तेम विभाव अनादिनो, ज्ञान थतां दूर थाय । ११४

छूटे देहाध्यास तो, नहि कर्ता तुं कर्म;
नहि भोक्ता तुं तेहनो, ए ज धर्मनो मर्म । ११५

ए ज धर्मथी मोक्ष छे, तुं छो मोक्षस्वरूप;
अनंत दर्शन ज्ञान तुं, अव्याबाध स्वरूप । ११६

शुद्ध बुद्ध चैतन्यधन, स्वयं ज्योति सुखधाम;
बीजुं कहीए केटलुं? कर विचार तो पाम । ११७

निश्चय सर्वे ज्ञानीनो आवी अत्र समाय;
धरी मौनता एम कही, सहजसमाधि मांय । ११८

सद्गुरुना उपदेशथी, आव्युं अपूर्व भान;
निजपद निजमाही लह्युं दूर थयुं अज्ञान । ११९

भास्युं निजस्वरूप ते, शुद्ध चेतनारूप;
अजर, अमर अविनाशीने देहातीत स्वरूप । १२०

कर्ता भोक्ता कर्मनो, विभाव वर्ते व्यय;
वृत्ति वही निजभावमां, थयो अकर्ता स्यांय । १२१

अथवा निजपरिणाम जे, शुद्ध चेतनारुप;
कर्ता भोक्ता तेहनो, निर्विकल्प स्वरूप । १२२

मोक्ष कह्यो निजशुद्धता, ते पामे ते पंथ;
समजाव्यो संक्षेपमां, सकल मार्ग निग्रंथ । १२३

अहो! अहो! श्री सद्गुरु, करुणासिंधु अपार;
आ पामरपर प्रभु कर्यो, अहो! अहो! उपकार । १२४

शुं प्रभुचरण कने धरुं आत्माथी सौ हीन;
ते तो प्रभुए आपियो, वर्तुं चरणाधीन । १२५

आ देहादि आजथी, वर्तो प्रभु आधीन;
दास, दास हुँ दास छुं, तेह प्रभुनो दीन । १२६

षटू स्थानक समजावीने, भिन्न बताव्यो आप;
म्यान थकी तरवारवत्, ए उपकार अमाप । १२७

उपसंहार

दर्शन षटे समाय छे, आ षटू स्थानक मांही;
विचारतां विस्तारथी, संशय रहे न कोई । १२८

आत्मभ्रांति सम रोग नहि, सद्गुरु वैद्य सुजाण;
गुरुआज्ञा सम पथ्य नहि, औषध विचार ध्यान । १२९

जो इच्छो परमार्थ तो, करो सत्य पुरुषार्थ;
भवस्थिति आदि नाम लई, छदो नहि आत्मार्थ । १३०

निश्चयवाणी सांभळी, साधन तजवां नो'य;
निश्चय राखी लक्षमां, साधन करवां सोय । १३१

नय निश्चय एकांतथी, आमां नथी कहेल;
एकांते व्यवहार नहि, बन्ने साथ रहेल । १३२

गच्छमतनी जे कल्पना, ते नहि सद्व्यवहार;
भान नहीं निरूपनुं, ते निश्चय नहि सार । १३३

आगळ ज्ञानी थइ गया, वर्तमानमां होय;
थाशे काल भविष्यमां, मार्गभेद नहि कोय । १३४

सर्व जीव छे सिद्धसम, जे समजे ते थाय;
सद्गुरुआज्ञा जिनदशा, निमित्त कारण मांय । १३५

उपादाननुं नाम लइ, ए जे तजे निमित्त;
पामे नहि सिद्धत्वने, रहे भ्रांतिमां स्थित । १३६

मुखथी ज्ञान कथे अने, अंतर छूट्यो न मोह;
तो पामर प्राणी करे, मात्र ज्ञानीनो द्रोह । १३७

दया, शांति, समता, क्षमा, सत्य, त्याग, वैराग्य;
होय मुमुक्षु घट विषे, एह सदाय सुजाग्य । १३८

मोहभाव क्षय होय ज्यां अथवा होय प्रशांत;
ते कहीये ज्ञानीदशा, बाकी कहीये भ्रांत । १३९

सकल जगत ते एठवत्, अथवा स्वप्न समान;
ते कहीये ज्ञानीदशा, बाकी वाचाज्ञान । १४०

स्थानक पांच विचारीने, छट्ठे वर्ते जेह;
पामे स्थानक पांचमुं, एमां नहि संदेह । १४१

देह छतां जेनी दशा, वर्ते देहातीत;
ते ज्ञानीना चरणमां, हो! वंदन अगणित । १४२

§

मूक रेखांकन
निर्जन पर्वत प्रदेश...नीरव
एकांत गहनतम गुफा...शुद्ध
वायुमंडल... स्व की खोज
में लीन... आत्म ध्यानी
साधक... सौष्ठवता से युक्त
सत्वशील तन-मन...अन्तःस्तल
के अहं गालने के ध्येय से
बाह्यांतर एकांतवास...अवलंबन
स्वरूप ध्यान... सुदीर्घ समय
की अखंड मौन-एकांत
साधना से उत्पन्न सुविचार
और उससे ही प्रादुर्भूत
प्रश्न `मैं कौन?' इस प्रश्न
के गहन चिंतन से प्रदत्त
आंतर मौन... साकार मौन
प्रतिमा सम साधक के ही
हृदयपटल से प्राप्त साकार
समाधान `मैं आत्मा हूँ।'

मूक रेखांकन
अडोल... निष्कंप... अलौकिक
आत्म दशा... स्पंदन के सर्व
निमित्तों से पर... मात्र शैलेशी
अवस्था... आंतर परिणति में
विभाव कृशता..जर्जरित देह में
आंतर शक्ति का चरम
विकास... `कोदंड बाण मुक्त
वत्...' `उर्ध्वगमन सिद्धालय
प्राप्त सुस्थित'... सर्वोच्च
आराधना का प्रतीक शैलेशी
करण... देह पात्र का आत्म
सत्व से त्रैकालिक भिन्नत्व...
`मटिये दैहिक पात्र जो'...
अरूप... अवर्ण... अमूर्त...`एक
मांही अनेक राजे अनेक मांही
एकीकं'... परम दशा का
देहातीत सिद्धत्व...
आत्मा... केवल... आत्मा...
और कुछ नहीं.. मैं आत्मा हूँ..
मै आत्मा हूँ... मैं आत्मा हूँ...!

अध्यात्म योगिनी, कृपादात्री
पूज्य बा.ब्र. ललिताबाई महासतीजी
(बापजी)
आपने सतसत वंदन

SHRI PANDIT RATNACHANDRAJI JAIN KANYASHALA TRUST
Conducted by Smt. P. N. Doshi Women's College of Arts

Saurashtra Kesari Pranguru Jain Philosophical & Literary Research Centre

Saurashtra Kesari Poojya Shri Pranguru had a very distinguished wisdom and knowledge. He contributed greatly in the study of scriptures, in collecting and preserving tadpatriya manuscripts, in establishing libraries of scriptures and pathshalas.

Perceiving this unique contribution and inspired by "Saurashtra Kesari Poojya Pranguru Birth Century Committee" Mumbai, to immortalise the name of Gurudev on the occassion of his Birth Centeuary, the above trust has founded "Saurashtra Kesari Pranguru Jain Philosophical and Literary Research Centre". The objectives of the Centre are as follows :

♦ To study, research, edit and publish Jain philosophy, Indian Darshans civilization and literature. ♦ To present Jainism scientifically. ♦ To research ancient manuscripts and Tadpatriya scriptures and conduct library activities. ♦ Keeping Jainism at the core, to develop humanitarian activities. ♦ To offer scholarships to students studying and researching Jain literature. ♦ To arrange lectures by scholars and saints. ♦ To organise camps and such other programmes that cultivate religious and meritorious qualities. To publish culture oriented qualitative literature. ♦ To encourage research paper reading, script reading and reading of old Jain manuscripts. ♦ To extend co-operation, facilities and guidence to shravakas and saints and Mahasatijis to gain knowledge those who are working for M.A. Ph.D. or M.Phil and to publish the research work. ♦ To prepare CD'S on ancient Jain books, Paintings, Sculpture, architecture etc. ♦ To propagate Jainism in the country and abroad by arranging seminars lectures etc and by providing information about Jain philosophy and literature through a website on the Internet.

Wishing your co-operation

Navneetbhai Sheth / Gunvant Barvalia
S.K.P. Jain Philosophical & Litarary Research Centre
Shri Jagdhir Boda Vidya Sankul
SPR Jain Kanya Shala Trust, Cama Lane, Ghatkopar (W)
Mumbai - 400086. Ph. 516 3434 / 512 5658 / 515 5476

अनुक्रमणिका

क्रमांक	विषय	पृष्ठ क्र.
१	नमुं श्री सद्गुरु भगवंत	१
२	वर्तमान आ काळ	१२
३	क्रिया जड....	२२
४	शुष्क ज्ञानी	३२
५	वैराग्यादि सफळ तो	३९
६	जो सह आतमज्ञान	४९
७	प्राप्ति तणां निदान	६०
८	अटके त्याग विरागमां	६७
९	आत्म – चिंतन	७८
१०	आत्मार्थी जन एह	७९
११	सेवे सद्गुरु चरणने	८८
१२	सद्गुरु लक्षण योग	९८
१३	उगे न आत्म विचार	१०६
१४	सद्गुरुना उपदेशवण	११४
१५	समज्ये जिन स्वरूप	१२५
१६	आत्मादि अस्तित्व	१३०
१७	करी मतांतर त्याज	१४२
१७ए	आत्म – चिंतन	१५२
१८	रोके जीव स्वच्छंद योग	१५३
१९	प्रत्यक्ष सद्गुरु योग	१६२
२०	समकित तेने भाखियुं	१७०
२१	विनय करे भगवान	१७७
२२	बुडे भवजळ मांहि	१८४
२३	समजे एह विचार	१९१
२४	ते गुरुमां ज ममत्व	१९७
२५	वर्णन समजे जिननुं	२०३
२६	वर्ते दृष्टि विमुख	२११
२७	जे समजे श्रुतज्ञान	२१६
२८	लेवा लौकिक मान	२२३
२९	लह्युं स्वरूपना वृत्तिनुं	२३१
३०	कांपे सद्व्यवहारने	२४०
३१	पामे नहीं परमार्थने	२४८
३२	ए मतार्थी दुर्भाग्य	२५५
३३	वर्ते आज्ञा धार	२६३
३४	एक होय त्रण काळमां	२७१
३५	शोधे सद्गुरु योग	२७८
३६	त्यां आत्मार्थ निवास	२८४
३७	जीव लहे नहीं जोग	२९१
३८	सद्गुरु बोध सुहाय	२९५
३९	ज्यां प्रगटे सुविचारणा	३०२
४०	गुरु शिष्य संवादथी	३०९
४१	आत्म – चिंतन	३१५
४२	आत्मा छे	३१७
४३	षड् दर्शन पण तेह	३२४
४४	नहीं जुदु एंधाण	३३३
४५	माटे छे नहीं आत्मा	३३७
४६	भास्यो देहाध्यासथी	३४२
४७	अबाध्य अनुभव जे रहे	३४८
४८	पण आत्माने भान	३५४
४९	आत्म – चिंतन	३५८
५०	प्रगटरूप चैतन्यमय	३६०
५१	जाणनारने मान नहीं	३६७
५२	आत्मानी शंका करे	३७६
५३	अंतर कर्ये विचार	३८२
५४	देहमात्र संयोग छे	३८९
५५	तेथी नित्य सदाय	३९६
५६	पूर्व जन्म संस्कार ते	४०२
५७	आत्म – चिंतन	४०८
५८	आत्मा द्रव्ये नित्य छे	४०९
५९	वदनारो ते क्षणिक नहिं	४१४
६०	केमां भळे तपास	४१८
६१	तथी जीव अबंध	४२६
६२	होय न चेतन प्रेरणा	४३०
६३	असंग छे परमार्थथी	४३६
६४	चेतन जो निजभावमां	४४२
६५	आत्म – चिंतन	४४७

मैं आत्मा हूँ

भाग : २-३

श्रीमद् राजचंद्र रचित
'श्री आत्मसिध्धि शास्त्र' पर प्रवचन

: व्याख्याता :

बा.ब्र.पू.डॉ. तरूलताबाई महासतीजी
M.A.Ph.D.

—: प्रकाशक :—

सौराष्ट्र केसरी प्राणगुरु जैन फिलोसोफिकल एन्ड लिटररी रीसर्च सेन्टर

जैन कन्या शाळा ट्रस्ट, श्री जगधीर बोडा विद्या संकुल,
कामा लेन, घाटकोपर (वेस्ट), मुंबई – ४०० ०८६.
फोनः ५१२ ५६५८, ५१५ ५४७६, ५१६ ३४३४

કછ૦ ૩૨૫૩ ૩૧કકછ૦

ક્ષ દ૨ દઢડ ૨૬૬૮

ઉંદ ૩૧૬. ૨૬૬૬૮૬૬૬૬૬૯ ૫૬૬૬૬૬૬૬૯૩૯ - ૫૩૬૬૩૧.

કૂ૯૮૬૩૯ ૩૧૯૫૬૬૬૫૩૬૫

૬૬૬૫૩૬૬ ૬૮ ૨૬૬૬૯૨૬૬ ૬૬૬૯૩૬૬૬૮૬૬૬૬૫

૩૬૨૬૬૫૩૯૬૬૬૬૯ ૨૬૬૬૫૬૬૬૬ (૫૬૬ ૨૦૦૨)

પ્ર प्रकाशकः

—: प्रकाशन सौजन्य :—

श्रीमती रमाबेन छोटालाल दफ्तरी,
श्रीमती जयाबेन शांतिलाल कामदार,
श्रीमती ईंदीराबेन शशीकांत महेता
श्रीमती मंजुलाबेन अनीलकुमार बोटादरा

—: **प्राप्ति स्थान** :—

● **गुणवंत एम. बरवाळिया**, मानद् संयोजक
૨૬૬૬ जैन फिलोसोफीकल एन्ड लीटररी रीसर्च सेन्टर
૩૬૬૨૮.૨૬૬૬૯૬૬ :
१/३१६, सिद्धिविनायक सोसायटी, हिंगवाला लेन एक्ष.,
घाटकोपर (ईस्ट), मुंबई – ४०० ०७५.
फोनः ५१२ ५६५८, ५१५ ५४७६

● **कल्पतरु अध्यात्म केन्द्र**
सुमेरु नवकार तीर्थ के नजदीक, मु. मीआगाम, ता. करजण,
जि. वडोदरा – पीन ३९१२४०

किंमत : रु. २००/-

द्वितीय आवृत्ति : मई २००२

—: मुद्रक :—

नितीन बदाणी — अरिहंत प्रिन्टींग प्रेस
पंतनगर, साईबाबा नगर, ३१० त्रिकाल बिल्डींगके पिछे,
घाटकोपर (पूर्व), मुंबई–४०० ०७७. फोनः ५११४३४१, ५१११९१५२
फॅक्सः ५०९०७०३

समर्पण

परम श्रद्धेय, वात्सल्यमूर्ति परम पूज्य बा.ब्र.ललिताबाई महासतीजी (बापजी) के श्री चरणों में सविनय.....

हे अम्ब!
तव हृदयनी सर्व सरवाणीओ
वहे छे मुज परे.....
शा-शा तेना नाम दऊँ।
मुज मस्तके जे कर धरे.....
कृपा किरण के वात्सल्य धारा?
उर नां अमी के सु-भाव सारा?
सतत मुज श्रेयनुं चिंतन
रहे छे तव उरे.....
आ कालमां तव चरण पामी
थई हुँ कृतकृत्य खरे.....!
तव अमी-सिंचनथी खील्युं जे
पुष्प मुज जीवन बागे.....
तेने धरूं छुं तव चरणमाँ
मुज हृदयनां सर्व भावे.....

आपकी चरणधूली **तरू**

आशिर्वचन

परम श्रध्धेय गुरुदेव तप सम्राट बा.ब्र. परमपूज्य श्री रतिलालजी महाराज साहेब के मौखिक आशिर्वचन।

साध्वी तरुलता जिनशासन का महकता हुआ पुष्प हैं। स्व-कल्याण हेतु होने वाली उनकी साधना, पर-कल्याण के हेतु होती हुई दिखाई देती है। साध्वीजी के इस प्रथम पुस्तक प्रकाशन के समय उन्हें मेरे अधिकाधिक आशिर्वाद हैं। वे और आगे बढे और प्रति वर्ष उनकी ऐसी पुस्तकें प्रकाशित हों।

आत्मचिंतनके निरंतर बहते हुए झरणोंका पवित्र प्रवाह

अध्यात्मयोगिनी पू. ललिताबाई म.स.जी की विदूषि शिष्यरत्ना पू. डॉ तरूलताबाई म.स.जीने मुंबई युनिव्हरसिटीसे Ph.D. की पदवी प्राप्त की है। युगपुरुष श्रीमद् राजचन्द्रजी, अवधुतयोगी आनंदघनजी, महाकवि बनारसदासजी एवं संत कबिर ये सत्पुरुष इनके महानिबंध के विषय थे।

शोधप्रबंधक के संशोधन कार्य दरम्यान पूज्य म.स.जीने श्रीमद की आत्मसिद्धि पर गहन अध्ययन कीया। इसके फलस्वरूप सं. २०४२ में आत्मसिद्धि शास्त्रपर आपका प्रवचन संग्रह संबंधित "मै आत्मा हूँ" ग्रंथ के रूप में प्रस्तुत हुआ।

हम जब के संकुल जीवन शैलीमें जी रहे है तब आत्मतत्त्वकी पहचान करानेवाले ऐसे सत्साहित्यकी बहुत आवश्यकता है। प्रस्तुत ग्रंथ के शब्द बिंदु व्याख्याता के आत्मानुभूति का निचोड है।

पू. श्री के प्रवचनो की अस्खलित धारा सुमधुर झरनो जैसी बहती है। चिंतनयुक्त तत्व का सरल शैली में प्रस्तुतीकरण जनजन को भा गया है। इसीलिए इस ग्रंथ की गुजराती में चतुर्थ एवं हिंदीमें द्वितीय आवृत्ति होने जा रही है। यही इस ग्रंथ की महत्ता दर्शा रही है। दो वर्ष पूर्व अंग्रेजी भाषामें भी इस ग्रंथ की दो हजार प्रतों का प्रकाशन हो चुका है।

स्वाध्याय प्रेमी मुमुक्षु भाई-बहेने इस ग्रंथ का नियमीत स्वाध्याय करते है। आत्मचिंतन की निरंतर प्रवाहीत धारा से प्रभावित होकर तत्वदर्शी प.पू. श्री जयंतीलालजी महराजश्रीने इस ग्रंथ को 'देवताई आईने' की उपमा दी है।

विदुषि व्याख्याता पू. तरूलताजी महासतीजीने "मैं आत्मा हूँ।" के अंतर्गत आत्मतत्त्व के अद्भूत रहस्यों को सरलशैली में प्रस्तुत किया है। स्व में समाकर आत्मा की अथाग शक्तिको पाने का प्रयास इस ग्रंथ के चिंतन मनन से अवश्य ही होता है।

प्रत्येक प्रकरण के अंतमें 'आत्मचिंतन' की अत्यंत मननीय पंक्तियों का पठन तन-मन को अवश्यही झकजोर कर देता है।

आत्मतत्त्व जैसे कठिन द्रव्यानुयोग के सिद्धांतों को सरलता से जनमानस को समझाने के लिये पू. सतीजीने कथानुयोग द्वारा समझाया है। द्रष्टांत एवं कथा द्वारा आत्मतत्त्व जैसा गहन विषय समझने में सरल एवं सूपाच्य हुआ है।

संतो का जीवन स्वयं एक प्रयोगशाला है। स्वानुभव में जो पाया वही परमार्थ हेतु जनमानस के समीप किया। उनके हर कर्तव्य में जनकल्याण समाया हुआ है।

१९९८ का वर्ष, सौराष्ट्र केसरी पूज्य गुरुदेव प्राणलालजी महाराजश्री के जन्म शताब्दि वर्ष के रूप में मनाया गया। स्व.पू. गुरुदेवकी स्मृति चिरंजीव रखने हेतु पू. बापजी एवं पू. डॉ. तरूलताजी स्वामी आदि सतीवृंद की प्रेरणा से एक जैन रिसर्च सेन्टर की स्थापना की गई। इस सेन्टर को "सौराष्ट्रकेसरी प्राणगुरु जैन फिलोसोफीकल एन्ड लीटररी रीसर्च सेन्टर" यह नाम प्रदान किया गया। जिनकी प्रेरणा से ही यह सेन्टर की स्थापना हुई है ऐसे पू. महासतीजीके प्रवचन संग्रह इसी सेन्टर के द्वार प्रस्तुत करते हुए हम परम धन्यता अनुभव करते है।

इस सत्कार्यमें श्री किरीटभाई दफ्तरी (टेक्सास – अमेरिका) का हमें बहुत सहयोग प्राप्त हुआ है।

प्रकाशन कार्य में सहयोग हेतु दानवीर दाताओंके आभारी है।

सेन्टर के विकास कार्य में सहभागी होने के लिए श्री कुमुदभाई महेता, श्री जीतुभाई शेठ, मिलनभाई अजमेरा, श्री तुषारभाई बाटवीया, श्री बिपिनभाई संघवी, श्री हसमुखभाई अजमेरा के बहुत आभारी है।

स्वाध्याय प्रेमी एवं आत्मार्थी मुमुक्षुओं की ज्ञान पिपासा को यह ग्रंथ अवश्य में संतुष्टी प्रदान करेगा ऐसी श्रद्धासह.....

गुणवंत बरवालिया
मानद् संयोजक
सौराष्ट्रकेसरी प्राणगुरु जैन
फिलोसोफिकल एन्ड लिटररी
रीसर्च सेन्टर

अक्षयतृतिया
मई – २००२

अनुक्रमणिका

क्रमांक	विषय	पृष्ठ क्र.
१	भोग्य स्थान नहीं कोय	१
२	भावकर्म निज कल्पना	७
३	झेर सुधा समजे नहीं	११
४	कारण विना न कार्य ते	१८
५	कर्म स्वभावे परिणमे	२५
६	पण तेनो नहीं मोक्ष	३७
७	उपजे मोक्ष स्वभाव	४०
८	आत्म – चिंतन	४७
९	आत्यंतिक वियोग	४८
१०	होय कदापि मोक्षपद	५४
११	उदय उदय सद्भाग्य	५९
१२	मोक्ष भाव निजवास	६५
१३	ते कारण छेदक दशा	७३
१४	मुख्य कर्मनी ग्रन्थ	८१
१५	र्स्वाभास रहित	८७
१६	आत्म – चिंतन	९१
१७	कर्म अनन्त प्रकारना	९८
१८	हणे बोध वीतरागता	९८
१९	हणे क्षमादिक तेह	१०३
२०	ते पदनी सर्वांगता	१०९
२१	जाति वेषनो भेद नहीं	११४
२२	वर्ते अंतर शोध	१२०
२३	लहे शुध्ध समकित ते	१२३
२४	आत्म – चिंतन	१३०
२५	अनुभव लक्ष प्रतीत	१३२
२६	उदय थाय चारित्रनो	१३७
२७	केवल निज स्वभावनुं	१४४
२८	कोटि वर्षनुं स्वप्न पण	१४९
२९	अव्याबाध स्वरूप	१५४
३०	कर विचार तो पाम	१५९
३१	सहज समाधिमांय	१६५
३२	धुन	१७२
३३	निज पद निजमांहि लह्युं	१७३
३५	वृत्ति वही निजभावमां	१८६
३६	शुध्ध चेतनारूप	१९२
३७	आत्म – चिंतन	१९८
३८	अहो! अहो! श्री सद्गुरु	१९९
३९	शुं प्रभु चरण कने धरुँ	२०९
४०	दास दास हुं दास छुं	२१६
४१	भिन्न बताव्यो आप	२२३
४२	आत्म – चिंतन	२२७
४३	आत्मभ्रांति सम रोग नहिं	२२८
४४	भवस्थिति आदि नाम लई	२३५
४४ए	ते निश्चय नहीं सार	२४२
४५	आगळ ज्ञानी थइ गया	२५०
४६	आत्म – चिंतन	२५९
४७	सर्व जीव छे सिध्ध सम	२६०
४८	ए जे तजे निमित्ते	२६६
४९	मुखथी ज्ञान कथे	२७२
५०	होय मुमुक्षु घट विषे	२७८
५१	आत्म – चिंतन	२८२
५२	बाकी कहीए भ्रांत	२८४
५३	सकल जगत ते एठवंत	२९०
५४	देह छता जेनी दशा	२९९
५५	पर्युषण के प्रवचन	३०७
५६	एक चिन्गारी	३०९
५७	विकसती क्षितिजो	३१९
५८	आरोह-अवरोह	३३०
५९	आराधनानुं अमृत	३४३
६०	प्रगट्यो भाण	३६२
६१	वीरनुं वीरत्व	३७४
६२	क्रांतिवीर महावीर	३८८
६३	अपराधने अलविदा	४०५
६४	आलोचना	४२६

मैं आत्मा हूँ - १

बा.ब्र.पू.डॉ. तरूलताबाई महासतीजी M.A.Ph.D.

मैं आत्मा हूँ - २

बा.ब्र.पू.डॉ. तरूलताबाई महासतीजी M.A.Ph.D.

ધૂન

सहजे सहजे सहजानंद
छूटे जो आ विषयानंद
पामे ज्यारे परमानंद
सहेजे सहेजे सहजानंद
आतमदृष्टी परमानंद
पामे सहेजे परमानंद
छूटे सहेजे विषयानंद
अन्तर दृष्टि परमानंद

મંગલાચરણ

अनन्तविज्ञाननमतीतदोषम्
अबाध्य सिद्धान्तर्त्य पूज्यम् ।
श्री वर्धमानं जिनमाप्तमुख्यं
स्वयंभूवं स्तोतुमहं यतिष्ये ।।

अनंत विज्ञानी, सर्व दोष रहित, पूर्वापर विरोध रहित वाणी के स्वामी, देवों द्वारा पूज्यनीय, वीतराग आप्त श्रेष्ठ तथा स्वयंभू श्री वर्धमान स्वामी की स्तुति करने के लिए मैं (हेमचंद्राचार्य) प्रयत्न करता हूँ।